डॉ. आभा पूर्वे रचनावली

डॉ. आभा पूर्वे रचनावली

संपादक

डॉ. शोभा कुमारी

ISBN : ९७८.८१.९८७१०३.३.८

प्रथम संस्करण
२०२५

सर्वाधिकार ©
लेखिकाधीन

प्रकाशक
अंगिका संसद
सराय, भागलपुर
(बिहार)-८१२ ००२
E-mail : angikasansad@gmail.com

हरियाणा कार्यालय
वार्ड-३३, सेक्टर-२८
सरस्वती विहार, गुरूग्राम-१२२००२

मुद्रक
Das Printer
गोविंदपुरी, दिल्ली।

मूल्य
पाँच सौ पचास रूपये मात्र

Dr. Abha Purbey Rachnawali Rs.500/-
Editor : Dr. Shobha Kumari

संपादक की बातें.....

आज साहित्य और समाज में डॉ. आभा पूर्वे की प्रतिष्ठा मुख्य रूप से कथालेखन को लेकर है, लेकिन यह भी साहित्य पाठकों से छुपी हुई बात नहीं है कि इनकी साहित्यिक प्रतिष्ठा इनकी काव्य प्रतिभा को लेकर किसी तरह भी कम नहीं, बल्कि यह कहा जाय कि इन्होंने कथासाहित्य से कुछ अधिक ही विविधता में काव्य हिन्दी और अंगिका को दिया है, जिसके बारे में हिन्दी के अधिकांश पाठकों को शायद जानकारी भी नहीं हो—इसका एक कारण तो बिल्कुल स्पष्ट है कि आभा पूर्वे के कथा साहित्य को लेकर हिन्दी के बड़े-बड़े आलोचकों ने बहुत कुछ लिखा है, यहाँ तक कि डॉ. अमरेन्द्र ने इनकी हिन्दी कहानियों का एक समग्र भी 'डॉ. आभा पूर्वे का कथा साहित्य' के नाम से प्रकाशित किया है, जिसमें संपादक ने उन सभी समीक्षाओं को सम्मिलित किया है, जो उनके कथा साहित्य पर प्रकाश डालती हैं।

ऐसा प्रयास डॉ. आभा पूर्वे की कविताओं को लेकर कभी नहीं हुआ, अवश्य ही इस दिशा में ऐसा प्रयास डॉ. अमरेन्द्र के द्वारा ही पूर्व में हुआ था, जब इन्होंने 'काव्याभा' नाम से काव्यसंग्रह का संपादन किया। निसंदेह डॉ. आभा पूर्वे के अधिकांश काव्यसंग्रहों को एक स्थल पर रखने का यह ऐतिहासिक प्रयास था और उसी प्रयास का यह फल है कि 'डॉ. आभा पूर्वे रचनावली' का प्रकाशन संभव भी हो पा रहा है। वैसे इस रचनावली में ही कवयित्री आभा जी के सम्पूर्ण काव्य को समेटना कहाँ संभव हो रहा है—नमामि गंगे को छोड़कर; 'नमामि गंगे' जो इनका

प्रबंधात्मक काव्य है, जिसमें गंगा की उत्पत्ति कथा से लेकर समुद्र में विश्रांति तक की यात्रा को समेटा गया है और गंगा के किनारे से जुड़ी कुछ रोचक कथाएं भी। 'तथागत' इनकी ऐसी ही प्रबंधात्मक काव्य-कृति है, जो अभी अप्रकाशित है। कुछ सोचकर भी इसे संकलित करने का मोह छोड़ गई कि कभी हुआ तो कवयित्री के न केवल हिन्दी के इस प्रबंध काव्य को ही, बल्कि अंगिका में रचित 'मंदोदरी' काव्य को भी रचनावली खंड (२) में रखूंगी, तब इसमें समय लगेगा, अभी तो यह रचनावली खंड (१) है। इसमें कवयित्री के सभी प्रकाशित मुक्तक-संग्रहों को समेटने का प्रयास हुआ है, चाहे वह छंदबद्ध दोहा हो या जापानी छंद के हायकू और ताँका। 'नागफनी के फूल' जो इनकी गजलों का संग्रह है, इनकी छंदप्रियता का ही उदाहरण है। इस संग्रह की सभी गजलें चौपाई छंद पर रची गई गजलें हैं, जिस पर बहुत कम बातचीत हुई है। जैसा कि इस रचनावली से प्रकट है कि कवयित्री ने अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए न केवल छंदबद्ध मुक्तक का सहारा लिया है, बल्कि मुक्त छंद का भी उतना ही सहारा लिया है।

अगर ऐसा कहा जाता है कि डॉ. आभा पूर्वे के छंदबद्ध मुक्तक से किसी तरह भी कम प्रभावी मुक्त छंद की मुक्तक कविताएं नहीं हैं, तो गलत नहीं होगा। 'गुलमोहर का गाँव' ऐसी ही छंदमुक्त रचनाओं का संकलन है, जिसकी कविताएं अपनी कोमल अनुभूतियों और बारीक अभिव्यक्ति पक्ष को लेकर सीधे मन तक उतरती हैं। देखें,

आज भी बिखरी हैं
फूलों की वे
पंखुड़ियाँ
मेरे आस-पास
तुम/करीब आकर तो देखो
पंखुड़ियों को
फूल बना दूंगी ।

(*सूखे फूल*, पृ.-४०)

कागज के एक टुकड़े पर
तुमने क्या लिख दिया मेरा नाम

पूरी-की-पूरी मेरी एक जिन्दगी
तुम्हारे नाम वसीयत हो गई ।

(*परिवर्त्तन,* पृ.-४०)

तुम्हारा स्पर्श
मैं/मंदिर के कण-कण में
जी रही थी
जिस दिन/तुम आये थे
और स्पर्श हुआ था
मेरे कण-कण से।
मैं बज उठी थी
घंटियों के रुनझुन-सी ।

(*तुम्हारा स्पर्श,* पृ.-४०)

डॉ. आभा पूर्वे नूतन प्रयोग की भी कवयित्री हैं, जो इनके काव्य के शिल्प विधान से भी स्पष्ट है। इन्होंने मुक्त और छंदबद्ध मुक्तक के अतिरिक्त स्वच्छन्द छन्द के सहारे भी मुक्तक के एक प्रसिद्ध भेद गीत शैली में रचनाए की हैं, और ऐसी रचनाएं संख्या में भी कम नहीं जो 'शिशिर की धूप' गीत-संग्रह में संकलित हैं। और अंत में सिर्फ इतना ही कहकर अपनी बातों का विराम दूंगी कि डॉ. आभा पूर्वे के मुक्तक काव्य चाहे वे जिस रूप में हो, पाठकों के मन पर प्रभाव छोड़ने में कभी भी नहीं चूकते। तभी तो इनके संबंध में यह हायकू बहुत लोकप्रिय है,

आभा पूर्वे की
कविताओं का लोक–
वृक्ष अशोक!

–(डॉ.) शोभा कुमारी

देव दीपावली
०५ नवम्बर २०२५

संपर्क : L-१३, गंगा अपार्टमेंट, लालबाग,
प्रोफेसर कॉलोनी, सराय,
यूनिवर्सिटी रोड, भागलपुर, बिहार -८१२००७
मो.-६२०४८८६५६८,
ईमेल : shashi.ryans@gmail.com

काव्य-संग्रह-क्रम

१. जब-जब झरे शृंगार	९-३०
२. गुलमोहर का गाँव	३१-८४
३. ताँका-शतक	८५-११२
४. नागफनी के फूल	११३-१३८
५. नमामि गंगे	१३९-१९४
६. शिशिर की धूप	१९५-२७४

जब जब झरे शृंगार

(दोहा-संग्रह)

जब-जब झटे शृंगार
आभा पूर्वे

माँ देती है जन्म ही, तीर्थंकर भगवान
काल-चक्र का चक्र है, रावण-सी सन्तान ।
माँ चिन्नई, गुजरात है, माँ ही है पंजाब
जो गुण जाना समझ गया, बाकी सभी हिसाब।
माँ शक्ति है, मन्त्र है, जीवन का विज्ञान
उसको ही है मोक्ष मिला, जिसको है यह ज्ञान।
माँ के बिन परिवार क्या, माँ खुद है परिवार
माँ छोटे से वृत्त में, एक सुखी संसार ।
प्यार जहाँ माँ का नहीं, वहाँ नरक का लोक
माँ संजीविनी सुधा है, दुख का विष ले सोख।
दोनों मानस ग्रन्थ हैं, दोनों गीता, वेद
कुछ भी तो होता नहीं, माँ-धरती में भेद ।
जब तक माँ इक शब्द है, तब तक है यह स्नेह
तब तक धरती स्वर्ग है, सुधा भरा है गेह ।
माँ जगदम्बा पार्वती, माँ ही चारो धाम
उसको मोक्ष न मिल सके जिसपर माँ हो वाम।
दुनिया में जितने हुए, बड़े वीर बलवान
उनके पीछे था लगा, माता का ही ज्ञान ।
जो भी ऋण है जगत में हट सकता है भार
पर कोई न चुका सके, माँ का कृत उपकार ।
छोड़ धरा के मोह को बन जाओ आकाश
दूरी मिटती जायेगी, होंगे दोनों पास ।

थोड़ा-थोड़ा ही सही, थोड़ा लेना मान
दुनिया बैरी हो नहीं, इतना लो सम्मान ।
जब भी आई शिशिर यहाँ, जब भी आय वसन्त
जब भी आया मैं यहाँ, पाई तुमको सन्त ।
जो कुछ था वह लुट गया, अब जीना बेकार
मन लगता है लाश-सा, और चिता, संसार ।
क्या कोयल की पीर है, क्या कोयल का राग
शीतलता बाहर करे, भीतर जलती आग ।
कोयल का तन श्याम है, मन है जहाँ सफेद
जो दिखता होता नहीं, समझ गए न भेद !
मन की ही यह प्रीत है, कोयल की यह कूक
प्रेम यही ईश्वर यही, बात कहूँ दो टूक ।
कोयल कहती है हमें, जीवन है बस गीत
जिसने गाया, हो गया, उसका दुख संगीत ।
कोयल गाती और फिर, हो जाती है मौन
हार-जीत जीवन-मरण, समझाती है कौन ?
कोयल अब तू बन्द कर, अपना पंचम राग
देख रही क्या तुम नहीं, जंगल की यह आग।
जीवन तो शूलों भरा, पग-पग पर है आह
कोयल तुम गाती रहो, कुछ तो कम हो दाह ।
जीवन में लय प्रीत की, कोयल बनी प्रतीक
पूजनीय बनता वही, जो पकड़े यह लीक ।
कोयल आओ बाग में, कर जाओ फिर कूक
जीवन ठहरा-सा लगे, उठा जाओ फिर हूक ।
जो जीवन यह फिर मिले, लूँ कोयल की बोल
जीवन जो है विष भरा, दूँ इसमें रस घोल ।
धन के बिन जीवन लगे, बिन पानी की मीन
पानी यह तब विष बने, जब मन इसमें लीन।

धन जीवन में पाप का, सबसे बड़ा है मूल
उसका जीवन कनक है, जो धन माने धूल।
धन की इच्छा भोग से, भोग न माने योग
धन जब होता मनुज को, लगता है सौ रोग ।
जिससे जीवन चल सके, धन उतना ही ठीक
बाकी धन तो त्यागिये, जो ताम्बुल की पीक ।
लेना हमको है सखे, जितना हो दरकार
धन-दौलत की अधिकता, खोले दुख का द्वार।
धन संचय न कीजिए, धन संचय है पाप
संचित धन है सिद्ध हुआ, जग भर का अभिशाप ।
धन का ही बस अर्थ का, आज विश्व में शोर
और धनी धनवान है, कमतर है कमजोर ।
धन तो अच्छा है वही, जो जग पाले साथ
हाथ न मांगे भीख को, खाली मिले न हाथ ।
धन ललचाता है उसे, जो मन से है दीन
दान ज्ञान के पुण्य से, अलग और न हीन ।
धन तो है कुछ समय का, धन का क्या इतिहास
कल आँखों से परे है, आज अभी जो पास ।
धन को जो समझे यहाँ, धूल बराबर मोल
वह धन ही है जगत में, जग खातिर अनमोल।
धन शोभे बस दीन को, धनवानों को त्याग
गूँजे सारे विश्व में, जीवन का यह राग ।
त्याग, दान, कल्याण ही, धन का है शृंगार
जिस धन में ये गुण नहीं, लील जाय संसार ।
सेना अपने देश की, भारत माँ का भाल
सैनिक सेना का यहाँ, सौ लालों में लाल ।
जो मरता है देश पर, भारत का वह लाल
बाकी तो धनवान भी, यहाँ वही कंगाल ।

सैनिक भारत देश के, भैरवनाथ-भभूत
भारतवासी के लिए, हैं वसन्त के दूत ।
दुख सीने पर झेल कर, लाते हैं जो ईद
ईश्वर से पूजित यहाँ, ऐसे वीर शहीद ।
जो गिर जाए देश हित, उसी देह का मोल
बाकी तो पानी भरा, यह तन फूटा ढोल ।
सैनिक सूरज की तरह, दुश्मन-जल ले सोख
ऐसा सैनिक धन्य दे, धन्य वही है कोख ।
करगिल या कश्मीर हो, या दिल्ली-आसाम
सैनिक अपने देश के, सभी जगह हैं राम ।
दुश्मन दल को मृत्यु ही, भारत लाती खींच
अपना सैनिक कृष्ण है, कुरुक्षेत्र के बीच ।
मर कर भी मरते नहीं, सदियों साल शहीद
राणा भी, रणजीत भी, अबदुल वीर हमीद ।
छीना औरों का नहीं, धरती या आकाश
भारत की सेना लिखे, नहीं नीच इतिहास ।
जंगल-जंगल कट गए, लगे कटे से खेत
अब हरियाली बीच में, उग आयेगी रेत ।
जंगल जन की देह है, जंगल-जीवन-प्राण
जंगल होगा शेष जब, कहाँ मिलेगा त्राण ।
जब जंगल कट जायेंगे, छिन जायेगी छाँव
बस जायेगा जगत में, मुर्दों का एक गाँव ।
जंगल शंकर, विष्णु है, जंगल कान्हा, राम
लगा रहा है कौन यह, फिर जंगल का दाम ।
जंगल जब घट जायेंगे, बढ़ जायेंगे रोग
एक पेड़ कटता नहीं, कट जाते सौ लोग ।
जंगल के ये पेड़ तो, ऋषि-मुनि-से संत
कैसे पाओगे कभी, बरखा, शिशिर, वसन्त ।

जंगल का शृंगार ही ऋतुओं का शृंगार
जंगल का संहार ही, ऋतुओं का संहार ।
कहते वन पाखी सभी, कहते वन के जीव
जंगल जबसे कट रहे, मरना हमें नसीब ।
जंगल है तो जान है, प्राण वायु का कोष
और तभी तक स्थगित, रुष्ट रौद्र का रोष ।
वन शेरों का घर नहीं, कस्तूरी का देश
जंगल को तुम काट रहे, मृत्यु बचेगी शेष ।
नर ही नारायण हुआ, नर का अब यह हाल
तन से तो कंगाल है, मन से अंगुलीमाल ।
कौन कहेगा आदमी, इसे देख कर आज
सर तो रावण के हुए, हाथ हुए हैं बाज ।
एक आदमी मौज से, एक आदमी दीन
छिन जाता है एक तो, एक रहा है छीन ।
क्या आदम की बात हो, रहे न आदमजात
शोणित से रंजित बने, जिसके दोनों हाथ ।
आज आदमी चाहता—एक भोग, बस भोग
लूट, लोभ औ लाभ का, जाग रहा है योग ।
तन तो मानसहंस है, मन है कुम्भीपाक
आज आदमी एक-सा, बाहर-भीतर फाँक ।
दुनिया भर में आदमी, दुनिया भर में लोग
अगर कहीं है आदमी, यह भी तो संयोग ।
अब मानव का अर्थ है—जाति, धर्म औ द्वेष
सिंह सभी मानव बने, कोय नहीं है मेष ।
एक कहीं जो आदमी, चन्दन जैसा शांत
लिपटे सौ हैं आदमी, करने उसे अशांत ।
क्यों लगता है आदमी, इतना दुखिया-रंक
इसने जो बोया यहाँ—लूट, घृणा, आतंक ।

छू कर मुझको दे गए, कैसा चन्दन रूप
प्यार तुम्हारा यूँ लगे, ज्यों जाड़े की धूप ।
प्यार जेठ की भोर है, प्यार शिशिर की धूप
प्यार देह की कान्ति है, प्यार हृदय का रूप ।
सौ-सौ बन्धन डाल दो, प्यार न माने बाँध
सागर को उन्मत करे, हर पूनो का चाँद ।
प्रेम हिमालय-शीर्ष है, मानसरोवर-हंस
जब तक होगा कृष्ण यह, जीतेगा क्यों कंस ।
प्रेम राम है, कृष्ण है, प्रीत राधिका-रास
घनी अन्धेरी रात में, फैला हुआ उजास ।
जीवन तो जंगल बने, अगर मिले न प्रीत
अंग-नाग के वास्ते, प्रीत बीन-संगीत ।
जग तो परती है बना, सूखा-सूखा रेत
बिजली भर दो प्रेम की, मरे घृणा का प्रेत ।
प्रेम धरा पर स्वर्ग है, प्रेम धरा का वेद
प्रेम गंग की धार है, समरसता का भेद ।
जग समझा है प्रेम को, एक सुनहला पाप
प्रीत कहाँ से पायगा, उल्टे लेता शाप ।
अग-जग में फैला हुआ, एक विकल अवसाद
किस्सा फिर से सब कहे, सीरी औ फरहाद ।
प्रीत सूर के गीत हैं, मीराबाई-गीत
चौरसिया की बाँसुरी, बिसमिल्लाह-संगीत ।
यह भी कैसी बात है, जागा भारत भाग
लूट रहे नेता सभी, लगा रहे हैं दाग ।
आजादी की ओट में, देश हुआ कंगाल
उधर अलग-सा असम जो, उधर अलग बंगाल।
आरक्षण के नाम पर, नेता सारे मस्त
बहकावे की आग में, सारी जनता त्रस्त ।

स्वर्णजयंती हो रही, आजादी की आज
पर 'आभा' भयभीत है, देख गिद्ध औ बाज ।
नेता अपने देश के, करते-ऐसा राज
चिड़िया बन जनता रहे, अफसर सारे बाज ।
जनता का शोषण करे, जनता-पालक वीर
इनके पत्तल जल नहीं, उनके पत्तल-खीर ।
चला रहे नेता यहाँ, ऐसा जनता-तन्त्र
जिसमें जनता का कहीं, गूँजे एक न मन्त्र ।
राजा-रानी एक हैं, सजा हुआ दरवार
साज-सजावट में बिके, जनता के घर-वार ।
अपने देशी राज में, नेता राजा-राज
ऐसा कुछ शासन चला, तरस गया यमराज ।
राजा को भाए नहीं, न्याय-नीति की बात
दिन की हत्या हो गई, खुश है काली रात ।
अपना शासन क्या कहें, कुछ लोगों का भोग
जनता के हिस्सा मिला, आजीवन का रोग ।
भारत का ये लोकतन्त्र, बिना लोक का तन्त्र
जात-धरम का गूँजता, संविधान में मन्त्र।
इन आँखों को क्या कहूँ, नीलम, पर्वत, झील
ये चेहरे के गगन पर, उड़ती हों दो चील।
जब भी देखे ये नयन, ऐसे हुए प्रतीत
जैसे रक्खे दो कमल, झुके-झुके विपरीत ।
गीत नहीं ये नयन दो, महाकाव्य दो पास
या बैठे हैं साथ-साथ, बाल्मीकि औ व्यास ।
देख तुम्हारे नयन को, मन मेरा उद्भ्रान्त
एक साथ कैसे उगे, नभ में सूरज-चाँद ।
आँखों की दो झील में, तैर रही दो नाव
जिसकी कोई थाह नहीं, लगा रही हैं थाव ।

सागर से बाहर हुए, आँखें हैं ये सीप
अन्धकार के बीच में या जलते दो दीप ।
आँखें हैं या चित्रकार, बिम्बित जिसमें प्यार
उजले का अस्वीकार है, काले का स्वीकार ।
तेरे सुन्दर नयन दो, पाखी खोले पंख
जो तेरा आदेश हो, इन्हें लगा लूँ अंक ।
मत पूछो तुम आज यह, भींग गई क्यों आँख
ज्योति जल कर रात भर अभी हुई है राख ।
जब से देखा है तुम्हें, खुले हुए हैं नैन
पहले मैं बेचैन थी, अब आँखें बेचैन ।
जीती बाजी हारकर, पाया मन का चैन
ऐसे सुख का क्या करें, जब हो गीले नैन ।
प्रेम दया की मूर्ति है, नारी देवी रूप
जब खोओगे 'और' तुम होगी वही अरूप ।
लड़ कर अपना कर्म ले, जीते अपना मान
आरक्षण में है नहीं, नारी का सम्मान ।
कब तक नारी जीयेगी, पा पुरुषों की भीख
क्यों विस्मृत यह कर गई, झांसी रानी सीख ।
नारी सीता, शारदा, अनसुइया की रीत
जीवन की यह मोक्षदा, वेदों का संगीत ।
भोग, हवस के जाल में, पड़ कर नारी आज
अपने हित को कर गई, नर फेरे में बाज ।
नारी का रस चाहिए, नहीं नारी की लाज
अब तो नारी समझ ले, राजनीति का राज ।
अपनी सीमा छोड़ कर, नारी सीमाहीन
नेता सम्मुख बज रही, ज्यों अहि सम्मुख बीन ।
नारी को बस शोभता, प्रेम, दया औ ज्ञान
मदर टरेसा भाव में, डूबी नारी-तान ।

आधुनिका न भी बनी, लुट आई सब बीच
कमल अमल थी मिट गई, भर लाई है कीच।
नारी तुलसीदल रहे, बेलपत्र मधु गन्ध
गमले का कैक्टस नहीं, नभ का शीतल चन्द ।
जब-जब जलते धूप में, मेरे अपने पाँव
तब-तब आती याद है, मेरा अपना गाँव ।
जब भी जाना चाहती, पिया तुम्हारा गाँव
नैहर-नेह न छोड़ता, बेड़ी पड़ गई पाँव ।
जबसे मुझको है मिली, तेरे मन की छाँव
बरबस ऐसा ही लगा, मिला पिया का गाँव ।
तन-मन भींगा प्रीत से, हार गई मैं दाँव
फूलों-सा है खिल उठा, मेरे तन का गाँव ।
मेरा ही सब लुट गया, मेरा था जो गाँव
मेरे घर के सलिल से, जलते मेरे पाँव ।
जब भी मन्दिर के लिए, उठे हमारे पाँव
ये कैसे प्रीतम हुआ, पहुँची तेरे गाँव ।
अमन-चैन की बाँसुरी-सा बजता था गाँव
अब अंगद से जम गए, हत्यारे के पाँव ।
तुम तो हो परदेश में, दे यादों के छाँव
गर तन्हा रहना तुम्हें, क्यों सिरजा यह गाँव।
रोज अकेले टूटती, मैं अपने ही गाँव
छल से छीना राज को, 'वह' वामन के पाँव ।
किसका कैसा देश यह, यहाँ मौत की छाँव
क्यों दूजे को दोष दूँ, अपना बदतर गाँव ।
पैसा-पैसा जोड़कर, सिरजा अपना गाँव
पंचतत्व को जब मिला, कहीं न उसका ठाँव ।
चलते-चलते थक गई, मिली कहीं न छाँव
अपना दुख किससे कहूँ, छाले पड़ गए पाँव ।

मीठी-मीठी गन्ध से, महके सारा गाँव
मेरे मन के मीत के, इधर हुए हैं पाँव ।
जाते-जाते रुक गये, कहीं तुम्हारे पाँव
देख न पाओगे कभी, मेरा अपना गाँव ।
क्या जाना परदेश में, रहना अपने गाँव
साजन की बाँहें मिली, माँ की शीतल छाँव ।
तनहा कैसे काट लूँ, सावन की बरसात
तन मन रीता-सा लगे, कैसी है सौगात ।
भींगी सारी रात मैं, गाया मेघा राग
तन तो गीला हो गया, मन की बुझी न आग।
सावन-सावन रट रही, बने न कोई बात
तनहा-तनहा कट रही, बारिश बाली रात ।
काली छायी है घटा, गरजे वन-आकाश
कंगन खनके हाथ में, लेकिन पिया न पास ।
आँगन में थी मैं खड़ी, सभी ओर थे मेह
डरती रही मैं रात भर, छोड़ गया था 'नेह' ।
भींगा आँचल कर गई, सावन की बरसात
लेकिन भींगा मन नहीं, रही अधूरी बात ।
माटी से खुशबू उड़ी, आयी ज्यों बरसात
चंदनवन मैं बन गई, बिना बताये बात ।
धुआँ-धुआँ-सा हो गया, तेरा-मेरा साथ
सावन की बरसात में, अनहोनी क्या बात ।
पागल सावन दे रहा, कोमल शीतल बूँद
आँगन-छत पर मैं फिरुँ, पलकें दोनों मूँद ।
काले-काले मेघ जब, भर देंगे आकाश
बिजली-सी पागल तड़प, होगी मेरे पास ।
सावन आये याद तो, पानी बरसे शाम
ऐसे कैसे भूल गये, साजन मेरा नाम ।

कैसे बीते नाथ बिन, बारिश वाली शाम
पाऊँगी तुमको कहाँ, सभी चुका कर दाम ।
बादल गरजे शाम को, जैसे बिखरे बाल
ऐसे में आकाश यह, लगता गोरी-गाल ।
होगा घर में क्या वहाँ, हास और उल्लास
लेते तिलक-दहेज में, जो बेटी की लाश ।
यह जो तिलक-दहेज है, मनुज-जाति का कोढ़
कैसे जीयेगा मनुज, अपना ही सर फोड़ ।
कहता कौन दहेज को, खाली है अभिशाप
जो देते हैं तिलक को, वह भी जग का पाप ।
माँ कैसे तब पुण्य हुई, बेटी जब अभिशाप
जो देते हैं तिलक को, लेते हैं वे पाप ।
जो बेटी की शादी में, देते पिता दहेज
सुलगेगी धीरे सही, कल सुहाग की सेज ।
यह समाज का कोढ़ है, यह तो नहीं दहेज
बेटी सबकी छाती में, घुसती छूरी तेज ।
तिलक तेज तलवार है, उसका दुश्मन एक
सास-ससुर-सांईं-ननद, दुश्मन कई अनेक ।
देवी माँ की कृपा से, सुखी रहे संसार
विजयादशमी का नमन, आप करें स्वीकार ।
हे देवी हे दुर्गे माँ, दो मुझको वरदान
मेरे होठों पर हँसी, मूर्छित जग में प्राण ।
यूंही मैं करता रहूँ, कब तक मंत्रोचार
अविरल बहते नयन हैं, दर्शन दो एक बार ।
माँ चरणों में झुका हुआ, है मेरा यह शीश
अब तो दे दो माँ मुझे, जी भरके आशीष ।
ऐसा दो वरदान माँ, जले ज्ञान का दीप
डूबे मन ईंजोर में, ज्यों मोती हो सीप ।

तन संयत-संयत बना, मन दिखता बेचैन
एक साथ है आ बसा, दिवस और है रैन ।
तुमसे मन की बात कह, मिल जाता है चैन
तुम भी बोलोगे यही, तुम्ही कहो यह है न ?
तिल-तिल कर जलती रहूँ, ऐसी उठती आग
लपटें मन पर छा गईं, तन पर दिखे न दाग।
तुम-सा साथी है कहाँ, जिस पर हो विश्वास
भीतर-भीतर शूल है, ऊपर फूल पलाश ।
मेरा जीवन व्यर्थ है, जो ना पाया ज्ञान
इस धरती पर बोझ-सा, बसे रहेंगे प्राण ।
जीवन का मकसद यही, मिले ज्ञान की भीख
आने वाली पीढ़ियाँ, हमसे पाए सीख ।
माता तेरे द्वार पर, आयी कितनी बार
जों दरशन मिल जाए जो, खुले सहस्त्रों द्वार ।
गंगाजल-सा मन बना, रहना मेरे साथ
जिस दिन कीचड़मय हुए, होगा वह अपराध ।
मन में उठती कामना, हो जाऊँ मैं व्यास
चाहे कितना भी पढ़ूँ, बुझे कभी ना प्यास ।
जीना मुश्किल हो गया, पलपल कातिल-तीर
दूर खड़ा जीवन हँसे, डाल पांव जंजीर ।
मुँह का छिनता कौर है, तन का छीने खून
अपने तो ऐसे लगे, जले घाव पर नून ।
सच का मुँह तो बंद है, मुखर यहाँ पर झूठ
शील-सचाई के यहाँ, भाल रहें हैं फूट ।
सोच हुई विधवा यहाँ, सधवा अब तो झूठ
शीलाचरण की भामिनी, बैठ गई है रूठ ।
अब तो जब स्वाधीन है, अपना सुन्दर देश
फिर भी ऐसा क्यों लगे, पराधीन परदेश ।

आजादी का अर्थ है, सबको हो सुख भाग
ऐसा ही माहौल हो, मेरे भारत जाग ।
गांधीजी का सत्य वह, नेहरू जी का त्याग
स्वर्णजयंती पर जगे, वह पटेल की आग ।
बहुत बटा है देश यह, अब न बटे यह देश
जाति-धर्म-विद्वेष का युद्ध रहे न शेष ।
सोने का पंछी कभी, अपना था यह देश
घोटाले के व्यूह में, भिखमंगे का भेष ।
लूट-पाट आतंक का, बंद करो अब नाच
गूंजेगी गीता यहाँ, नानक वाणी सांच ।
बहुत हुआ निर्भर रहे, मुँह ताके परदेश
आभा अपनी बांह पर, चलो संभालो देश ।
कैसे कोई यह कहे, अपना है यह देश
जबकि शान के वास्ते, बिगड़ा हो परिवेश ।
कितनी आशा थी हमें, चमकेगा यह देश
लेकिन मन मुर्च्छित हुआ, ख्वाब हुए सब शेष ।
बहती नदियाँ मौज में, टेढ़ी-मेढ़ी चाल
आने वाला भूल गया, अपनी सारी चाल ।
जीवन का है सच यही, नदियाँ बहती झूम
इसीलिए सागर उन्हें बरबस लेता चूम ।
आँखें ऐसे चू पड़ीं, जैसे नदिया-धार
मन मेरा मल्लाह है, प्यार तेरा पतवार ।
मेरा मन अल्हड़ फिरे, नदियों-पर्वत-गाँव
एक यही तो यात्री है, रुके न जिसके पाँव ।
रजनी आधी खो गई, उठती जाती आस
अब तो आकर छोड़ जा, दस्तक मेरे पास ।
सूनी-सूनी रात है, पिया गये परदेश
कोई तो आ कर मिले, पाती या संदेश ।

किरणें फैली जगत में, कर देती इंजोर
मेरे मन की रात को, मिटा न पाती भोर ।
अन्धड़ जैसा लोक यह, व्याकुल मेरे प्राण
ऐसे में फिर भी लगा, एक तुम्हारा ध्यान ।
मैंने तुमसे है कहा, मोक्ष यहाँ है प्रीत
तुमसे बिछुड़ी जो कभी, टूटेगी यह रीत ।
तुम जो आये मिलन को, बांधा मुझसे नेह
जीवन फुलवारी हुआ, फिर नव यौवन देह ।
तुमसे बोलूँ मैं नहीं, खाती हूँ सौगन्ध
मुझको बोलो फूल मत, औ खुद को मकरन्द ।
कैसे तुमसे मैं कहूँ, जाओ मेरे प्राण
जैसे कहती 'जाव तुम' जाती मेरी जान ।
कूकी थी कोयल कभी, मैं ही रही थी मौन
आती हो क्यों बार-बार, मेरी हो तुम कौन ।
कलियाँ आये डाल में, भौंरा देखे आस
फूल खिले जब डार पर, भँवरा न था पास ।
अब न तुम आओ यहाँ, तुमको है सौगन्ध
माना कि मैं फूल हूँ, तुम इसके मकरन्द ।
जाते-जाते कह गई, आना मेरे मीत
शाम अगर जो ढल गई, टूटेगी यह प्रीत ।
तुमने छूकर कर दिया, क्या ये मेरी देह
दौड़ रहा है खून में, केवल भींगा स्नेह ।
तेरी यादों में हुई, जब से आँखें बंद
सांसों में है बस गई, बासमती की गंध ।
पाकर तेरे प्यार की, अनछुई-सी छाँव
हाथ हुये कचनार के, मौलसरी से पाँव ।
जीवन मरु है रेत है, प्रीत जमन की धार
दोहे में कैसे अंटे, गोकुल का संसार ।

गोवर्धन-सी भीग गई, गिरा प्रीति का मेह
मन वृंदावन हो गया, वंशी हो गई देह ।
जो भी गिरते डाल से, मुरझा जाते फूल
तब-तब मैं यह सोचती, किसकी इसमें भूल ।
आती-जाती पवन में, बोले कोई पाख
रहे न बरबस ही सदा, मंजर लादे साख ।
साजन आये साथ में, सौतन लेकर संग
आँखें मेरी भींग गईं, डूबा मेरा रंग ।
जाते-जाते रुक गया, मेरा मीत बसंत
होते-होते रुक गया, मेरा जीवन संत ।
सुन्दर बाला-सी सखी, कल्पलता की देह
मैं भी तो जानूँ तुम्हें, किससे जोड़ी नेह ।
साजन आये मिलन को, दिल में उठी उमंग
क्या ऐसा तुम कर गये, उठती रही तरंग ।
भूली विसरी याद को, लेकर आये संग
यादें हैं कुछ ऐसी कि, छोड़े अपना रंग ।
लेकर आया पवन वह, फैली मृदु सुगन्ध
देख हुआ विस्मित हृदय, टूटी सब सौगन्ध ।
तुमने आकर पास में, दी है इक आवाज
तेरे-मेरे बीच के, टूट गये सब राज ।
जब तक यह संसार हो, मन में रहे न खेद
पूरी होगी साध सब, रहे न कोई भेद ।
प्यार-प्रीत तो राग है, गाते जाना मीत
जीवन से है प्रीत तो, बरबस गाना गीत ।
आओ मेरे सजन तुम, बीती जाती शाम
आँगन भर तो लिख दिया, मैंने तेरा नाम ।
जब-जब सोचूँ रात को, बीते कैसे काल
तब-तब आकर तोड़ गये, बंधनवाला जाल ।

जब भी बैठा द्वार पर, बोल गया एक काग
तन तो चंदन का हुआ, और मन फाग ।
कैसे छेड़ूँ तार को, वह वीणा का साज
गान न मेरा खोल दे, छुपा हुआ वह राज ।
जबसे तुमने हाथ पर, लिखा है अपना नाम
आखिर में मैं बिक गई, बिना दाम के दाम ।
तनहा बैठी नाव पर, खेती हूँ पतवार
कैसे उतरूँ पार अब, सोचूँ बैठी धार ।
पानी के भी बीच में, प्यासी रहती मीन
हँसी-ठिठोली बीच में, हो जाती हूँ दीन ।
सूखे-सूखे पेड़ पर, उग आये नव पात
दिन आये हैं मिलन के, दुलहन जैसी रात ।
दिल का कैसा प्रेम यह, दूर हुआ है चैन
किससे बोलूँ हाल मैं, बोले तो बस नैन ।
जब भी बनना चाहती, मधुर प्रेम का पात्र
पात्र गरल का वह करे, छू कर मेरा गात्र ।
उतरी लाली मांग से, सूना जग वीरान
देखूं गीता-वेद को, साहिब ग्रंथ-जहान ।
हीरे-मोती लाख के, मन को कुछ ना भाय
जीवन मेरा रीतता, यादें जब भी आय ।
तितली उड़ती फूल पर, मैं उड़ती आकाश
यह तुमने क्या कर दिया, लाकर अपने पास ।
शब्दजाल में सिमट कर, सिमट गया है नाम
शब्दों के इस व्यूह में, अर्थ व्यर्थ बदनाम ।
खत आया है मीत का, भेजा है पैगाम
भेजा क्या सम्वाद है, लिखा है मेरा नाम ।
उजड़ा मेरा बाग है, माली है परदेश
एक दहकता लोक है, सारा यह परिवेश ।

तुम बिन करती साधना, रमता कहीं न ध्यान
जैसे करती आँख बंद, तुम आते छविमान ।
शीतल जल की धार में, बहता जैसे मीन
मैं भी ऐसी मगन हुई, तुममें हुई विलीन ।
कैसे अपनी बात हो, वह बैठे हैं मौन
गलबांही को छोड़ कर, चुप्पी तोड़े कौन ।
अपने हों या गैर हों, कभी न पूछे हाल
जब भी कहते हैं कभी, बस अपना बेहाल ।
कैसी है बारात यह, थकी देह मन श्रांत।
शहनाई के बीच भी, दुल्हन सजल नितांत ।
डंसती काली रात है, डंसता ज्यों है नाग
विष खाकर वह मर गया, दिखे कहीं न दाग ।
उजला कौवा डाकता, कभी न मीठी बात
उसकी आँखों में गड़े, बस कोयल की जात ।
टूटी मेरी आस वह, बांधी थी जो डोर
लगता नहीं कि आएगी, लाली वाली भोर ।
घड़ियाँ गिन-गिन समय की, काट रही दिन चार
लेकिन नहीं सुनाये दे, दस्तक मेरे द्वार ।
निशि-दिन तेरी याद में, उभरे सौ-सौ गीत
गोकुलवासी हो गये, लेकिन मेरे मीत ।
सदियों पहले महल में, गाये थे जो गीत
बरसों बीते, आज भी बाकी है संगीत ।
कैसे जाऊँ रात में, साथी ढूंढे साथ
हाथ मिले तो हो गया, दिन भी जैसे रात ।
जब भी गाऊँ गीत मैं, आये तेरा नाम
और यही एक बात तो, कर जाये बदनाम ।
मिलते थे तुम जब कभी, भर देते थे प्यार
आज अकेले में वही, बना हुआ अंगार ।

कैसी आयी रात है, देती है आवाज
बिन छेड़े बजती कहीं, और कहीं पर साज ।
छेड़ूं वीणा जब कभी, फूटे कभी न गीत
आकर अब तो साथ दो, दूर खड़े क्यों मीत ।
गीतों का सरगम कहीं, छेड़ रहा है मीत
लेकिन बेबस है खड़ी, देखो मेरी प्रीत ।
मन भी रीता-सा हुआ, रीता-रीता राग
छूकर तुमने कर दिया, एक दहकती आग ।
दीपक-सी जलती रही, लेकिन गई न रात
शहनाई के साथ ही, लौट गई बारात ।
बिखरी तो थी चाँदनी, लेकिन मिटी न प्यास
एक जनम फिर जाएगा, करते अनुनय-आस ।
कैसे जाऊँ शिखर पर, सहज नहीं है ताज
फूलों की घाटी कहीं, देती है आवाज ।
डाले भी तो डाल गये, ऊपर-ऊपर रंग
कोरा कागज-सा रहा, मेरा प्रेम-प्रसंग ।
जाग-जाग कर काट दी, मैंने सारी रात
क्या-क्या मैं तुमसे कहूँ, वह सारा उत्पात ।
नागन-नागन सांस हैं, नागन-नागन देह
विष बन-बन कर फैलता, आज हमारा नेह ।
आँखें गीली कर गया, आज तुम्हारा साथ
जाने कब किस मोड़ पर, हाथ छुड़ाये हाथ ।
कहाँ-कहाँ तक लिख दिया, मैंने तेरा नाम
जाना मैंने जब हुई, जग भर में बदनाम ।
जाते-जाते समय में, बरस गया जो नेह
चंदन-चंदन हो गई, मेरी सारी देह ।
हर पल सोते जागते, कर-कर तुमको याद
जीवन के सब पल सुखद, कर आई बरबाद ।

कैसे सजता तुम कहो, गंधो का मेहराब
आंगनवाले बाग में, जब ही नहीं गुलाब ।
कान्हा तेरी बाँसुरी, छेड़े ऐसी तान
देह देह में न रहे, मेरे रहे न प्राण ।
सुधबुध सारी खो गयी, खो आई मैं होश
मेरा ही कुछ दोष था, क्यों दूं तुमको दोष ।
कांटे गड़ते हैं मुझे, तुमको होती पीर
अब जाके विश्वास हुआ होंगे रांझे-हीर ।
आंगन सूना हो गया, तुम जो हो परदेश
कौन संवारे प्यार से, खुले हुये ये केश ।
आँखें मेरी ढूंढती, खत में वह संदेश
जो तुमसे उम्मीद थी, जाने पर परदेश ।
अगर रुके जो राह में, खा जाओगी मात
आभा चलती ही चलो, घिर आयेगी रात ।
दिन भी है सहमा हुआ, रातें भी भयभीत
आभा तुम भी गा रही, सन्नाटे का गीत।
अब तो जीना है कठिन, छोड़ गये तुम साथ
प्राणों पर हर साँस का, चलता है उत्पात ।
हाथ रची है मेंहदी, पिया बसे परदेश
सावन वैरी आ गया, कैसे दूँ संदेश ।
जिस दिन से बरसा गये, प्रीति मेघ का राग
चम्पावन-सा बन गया, काया का ये बाग ।
जल में रहकर प्यास जो, मिटा सके न, मीन
तब बोलो क्यों रेत पर, नहीं दिखोगे दीन ।
मन का दीपक सूर्य है, करता रहा इंजोर
मन का सूरज जो बुझा, तम-सा होगा भोर ।
दुनिया ऐसी बेरहम, सब जायेगी भूल
फिर भी मैं हूँ रच रही, नेक-नीति के फूल ।

लिख-लिख पाती थक गई, पता मिला ना देश
मन की तृष्णा मिटी नहीं, उमर हो गई शेष।
तन-मन तुमने छू लिया, किया नहीं संवाद
प्रेम हुआ सिहरन हुई, फिर भी है अवसाद।
मैं तुमसे क्या बोलती, आओ मेरे संग
हर पल ही अहसास था, जैसे तुम हो संग ।
जीवन भर तुम दीप-सा, जलते रहना साथ
फिर चाहूँगी मैं नहीं, कभी सुनहला प्रात ।
कहते हो तुम सत्य है, जो भविष्य है 'खोल'
पल में जीना सीख लो, पल ही है अनमोल ।
तुम सूरज चंदा बनो, मैं विस्तृत आकाश
अग-जग में फैले सदा, माघ सूर्य 'परकाश' ।
सारे सपने चूर थे, फिर भी बाकी आस
भले छोड़ मुझको गये, सुधि तो मेरे पास ।
दुनिया सोयी रात भर, मैं जागी हूँ रात
कसक रही मन में यही, होती कोई बात ।
कौन खुशी है बांटता, सब को अपना ध्यान
रखता कोई साथ है, ज्यों तलवार मियान ?
मंदिर-मस्जिद के लिए, लड़ते-मरते कौन
पत्थर मूरत बैठ कर, हँसती रहती मौन ।
उड़ता मन पंछी जहाँ, उड़ जाता है गाँव
ठहर नहीं पाते कहीं, मेरे अपने पाँव ।
किस्मत का ही खेल है, उसका ही अपकार
आपस में हैं लड़ मरे, कितने ही परिवार ।
ढहती बालू-भीत-सी, पलपल सबकी साँस
हर पल का उपयोग कर, रहे न कोई फाँस ।
अब तो तन-मन नहीं, प्रीति-प्रेम है शेष
बैठ कबूतर सोचता, किसका लूँ संदेश ?
तीर्थंकर के देश में बुद्ध-वचन भी शेष
बैठ कबूतर सोचता, किसको दूँ संदेश ?

गुलमोहर का गाँव

(कविता-संग्रह)

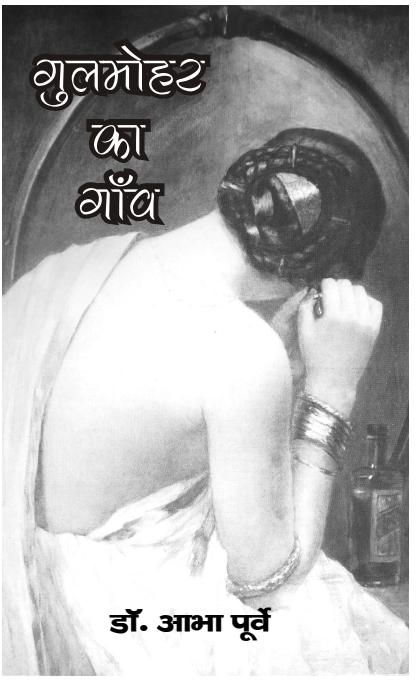
गुलमोहर
का
गाँव
डॉ. आभा पूर्वे

सपने

सपने जो कल तक
मैंने बुने थे
वह आज तक
मेरे अपने
न हो सके

आज जब
मैंने सपने बुनने
छोड़ दिए हैं
कल तक के वे सपने
मेरी मुट्ठी में
आ गए हैं ।

प्यार

राधा बनकर
जो प्यार
पाया मैंने
रुक्मिणी बन
न पा पाती

रुक्मिणी तेरा प्यार
रहा घर के अंदर
राधा का प्यार
महका बन कर
शहर-शहर ।

लिखना है मुझे

राम से उपेक्षित
सीता के वियोग को
स्वर दिया वाल्मीकि ने
और रामायण बन गई
लेकिन तुम्हारे साथ रहकर भी
मैं जिस वनवास का वियोग
सह रही हूँ
उसको तो स्वर मुझे ही देना है
मुझे ही लिखना है
अपने लिए एक रामायण;
मेरे राम ।

पंक और पंकज

पसरे हुए पंक पर
खिला हुआ कमल
कमल मेरे प्यार का
बहुत प्यारा है मुझे
पर इस कीचड़ से मोह कैसे तोड़ दूँ
जहाँ से दो-दो जोड़े चरण
एक बार आ मिले थे
पंक, तुम्हें मैं प्यार करती हूँ ।

गंध को कैसे बाँधू

मुझे
गंध को मुट्ठियों में बाँधने न कहो
जो हाथ आती हैं
वे फूल की पंखुड़ियाँ
संभव है, फूलों के रंग से
अंगुलियाँ भी रंग जाए
और हथेली इन्द्रधनुष हो जाए
संभव है
पराग भरे फूल
हथेलियों को
तितली के पंख कर जाए
लेकिन फूलों की गन्ध को
इन अंगुलियों से कैसे छूऊँ
मुट्ठियों में कैसे बाँधू
जो हवा की सखा होती है ।

मेरी मध्यमा पर
उग आये कचनार के कुसुम
मत कहो अपनी गंध को
मुझसे
मुट्ठियों में बाँध लेने
मेरी अंगुलियों को
पलाश ही बनने दो
हथेलियों को इन्द्रधनुष ही होने दो
तितली के पंख ही बनने दो
गंध को तो
यादों में बाँधना भी दुष्कर होता है
मैं गंध को मुट्ठियों में कैसे बाँधू ।

विवशता

मैं जब कभी भी
खिलखिलाना चाहती हूँ
तब-तब मेरे होंठों पर
एक फीकी-सी मुस्कुराहट की जगह
धीरे-धीरे-धीरे
उभरने लगती है
एक विद्रुपता
जो होठों की हँसी चुराकर
खोंस देती है
होठों के नीचे
फिर एक शीतयुद्ध
चलता रहता है
दोनों के बीच
होंठ काँपते रहते हैं सिर्फ
न हँसी उभर पाती है
और न विद्रुपता
छोटा-सा
जीवन का इतिहास
अलिखित ही रह जाता है ।

प्रश्न

तुम्हारे जाने के बाद
एक चिन्ह जो
उभर आया था
उसे देखकर

बार-बार
मेरे मन में
न जाने क्यों
सैकड़ों, हजारों
प्रश्न उग आते हैं
जो मुझे
यह सोचने पर
मजबूर कर देते हैं कि
ये चिन्ह हैं ?
प्रश्न-चिन्ह ?
या पद-चिन्ह ?

सीता का भविष्य

सीता,
यह द्वापर
त्रेता को पार करते
कलिकाल तक आ गया
पर तुम
अब भी मुक्त नहीं हो
ऑफिस में रावण की आँखें
घर में राम की शंका
अब तो तुम्हारे लिए
धरती भी नहीं फटती
क्यों ?
क्या धरती भी
तुम्हारे विरुद्ध हो गई है
या धरती अब नहीं चाहती

कि सीता धरती में समाती रहे
सोचो सीता
जल्दी सोचो
तुम्हें क्या करना है ?

मैं और तुम

तुमने
मेरा परिचय
अक्षर से कराया था
और मैं
शब्दों की गलियों से
गुजरती हुई
वाक्य के चौड़े
और विशाल
रास्ते से होते हुए
कविता की मंजिल तक
पहुँच गई हूँ
पढ़ती हूँ अपनी ही
कविता को
जिस कविता की ध्वनि
तुम हो
और
इसका रस भी
तुम ही ।

काश, तुम जान पाते

कौन कहता है कि
रात भर बाहर खड़े
पाले की चुभन से
सिर्फ
तुम ही बिंधते रहे
काश तुम यह भी जान पाते
कि
इस जलती हुई
लकड़ी के पास
तुम्हें
याद करती अकेली बैठी
मैं भी
कितनी सर्द-सर्द
होती रही, होती रही ।

शायद

प्यार का एक कर्ज
जो तुम
मुझ पर सौंप गये थे
मैं तनहा
उतार नहीं पाती हूँ
तुम होते
तो शायद उतर जाता ।

सूखे फूल

आज भी बिखरी हैं
फूलों की वे
पंखुड़ियाँ
मेरे आस-पास
तुम
करीब आकर तो देखो
पंखुड़ियों को
फूल बना दूंगी ।

परिवर्त्तन

कागज के एक टुकड़े पर
तुमने क्या लिख दिया मेरा नाम
पूरी-की-पूरी मेरी एक जिन्दगी
तुम्हारे नाम वसीयत हो गई ।

तुम्हारा स्पर्श

तुम्हारा स्पर्श
मैं
मंदिर के कण-कण में
जी रही थी
जिस दिन
तुम आये थे

और स्पर्श हुआ था
मेरे कण-कण से।
मैं बज उठी थी
घंटियों के रुनझुन-सी ।

पतझड़ का सुख

पतझड़ के बाद
शेष रह जाता है
प्रकृति में सिर्फ
वीरानियाँ
पर गूँजती रहती है
उन वीरानियों में भी
एक सुमधुर गीत
जो तुम छोड़ जाते हो
चुपचाप
निस्तब्धता के बीच
और
मैं/डूबी खोयी रहती हूँ
अगले पतझड़ तक ।

जो हुआ है

पत्थर की शिला बन
कई जन्मों से
इंतजाररत थी
मैं

समझ भी न पायी
और रेत बन
तुम्हारे
जल में
विलीन हो गई ।

आहट

वह एक आहट थी
या तुम्हारा आगमन
मन में वासंती फूल
खिल-खिलकर
महक उठे थे
और
खो गई थी कहीं
गोकुल की गलियों में ।

संशय

मीठी खुशबू से
पूरा वातावरण
महक उठा था
वह खुशबू थी
या
तुम ही ?
उड़ा था जो आँचल
उड़ कर

मेरी आँखों को
ढक गया था
वह आँचल था
या तुम थे ?

ऐसे में

मन के किसी कोने में
प्यार का संघर्ष
चल रहा था
उसके पास होने का भाव
गहरा रहा था
शबनमी बून्द-सी शीतलता
बढ़ रही थी,
ताप की अगन से
रोम-रोम
जल रहा था
पर कहाँ था
उसका यह
सारा प्यार ।

भय

आज तो मैंने चाहा था
तुमसे प्यार की संपूर्णता
क्यों थरथरा गए तुम्हारे हाथ
संपूर्णता को समेटने में ।

जान गई मैं

आती नहीं है
अब वह उमंग
बादल को देखकर

आती नहीं है
अब वह
प्रीति
वैसी ही लौटकर

आता नहीं है
अब वह
महाकाव्य
मन के कोने पर

जान गई मैं
तुम्हारा
आना नहीं होता है ।

भेद

न तो
तुम्हारे आने से
होती है
मुझमें
गुदगुदी या सिहरन,
न तो

तुम्हारे आने से
होती है मुझमें
कोई वेदना या घुटन
पाणिग्रहण तो
किया तुमने
और
पानी रखा किसी और ने
कहीं मेरा मन इसे
जान तो नहीं गया है ?

जाते-जाते

मेरे हाथों से
तुम अपने हाथ
छुड़ा कर जब चले गये थे
मैं
बहुत देर तक
अपने
हाथों को निहारती रही थी
जानते हो क्यों
क्योंकि अब
वे हाथ
खुशबू से तर थे
तुम्हारे स्पर्श से
कारण
तुमने उनमें
लाखों, करोड़ों
फूल खिला दिये थे ।

तुम्हारे जाने के बाद

मेरी आँखें
तुम्हारे साथ रहने पर भी
झीलें बनी रहती हैं
जिसमें उतारती हैं
तुम्हारी परछाइयाँ
वही झीलें
तुम्हारे आने के बाद
यकायक समुद्र
बन जाती हैं
जिसमें प्रतिबिम्ब
उतरते रहते हैं
तुम्हारी
ढेर सारी स्मृतियों के
आकाश के ।

विसंगति

उसके जीवन की
अनेक अच्छाइयाँ
उसे कोई नाम न दे सकीं
जिनसे वह जाना जाता
हाय आज मेरे ही कारण
वह जाना जाता है
बस अपनी कुछ
बुराइयों के कारण ।

महकती यादें

कैसे दामन छुड़ाऊँ मैं
उन महकती यादों से
क्या कहूँ मैं
लौट कर आई हुयीं फरियादों से
एक ख्वाब था जो टूट गया
क्या कहूँ मैं रातों से
अपने हो जाते हैं पराए
जरा-जरा-सी बातों से ।

तब-तब

फूलों की पंखुड़ियों-सा
तुम्हारा कोमल हृदय
जिसमें सिर्फ भरा हो
प्यार ही प्यार
और वही
तुम्हारा हृदय
जब-जब वार करता है
तब-तब मेरा हृदय
कोमल पंखुड़ियों की धार से
लहू-लुहान हो उठता है ।

निवेदन

मेरी भावना के आवेग को
जब तुमने रोका था
सर्पदंश की तरह था
जिसे मैं पी गई थी
पर वह
कण्ठ पर न रुक कर
मेरे सम्पूर्ण वजूद में
फैल गया था
इसीसे शिव की तरह
नीलकण्ठ न होकर
साक्षात कालकूट हो गई हूँ
इस नये कालकूट को
हृदय पर नहीं रखोगे, प्रिये ?

यह भेद क्यों

राम की भक्ति करूँ
तो धर्म की आराधना होगी
कृष्ण की भक्ति करूँ
तो प्रेम की उपासना होगी
मातृ की भक्ति करूँ
तो कर्त्तव्य को पालना होगा
समाज की भक्ति करूँ
तो समाज-सेवा की भावना होगी
और तुम्हारी भक्ति करूँ
तो प्रेम की वासना क्यों होगी ?

यूँ तो नहीं

तपती रेत पर
हम दोनों
चल रहे थे
एक-दूसरे का हाथ थामे
लेकिन पाँव
दोनों के जल रहे थे
इसलिए मैंने
तुम्हारे पाँव के नीचे
पथ पर अपना आँचल
बिछाया था
और तुमने
मेरे पथ पर
अपनी हथेली
रख दी थी ।

स्मृति

अग्नि
बुझी
शेष रह गई
सिर्फ मुट्ठी भर
राख।
मैं खुश थी कि
चलो आग राख तो हुई
इसी खुशी में
मैंने राख को

हाथ से चाहा था
उलीच देना
कि तभी
फिर
सुलग उठी अग्नि
आकाश को छूने लगी ।

तुम और मैं

हम दोनों
एक ही धार के
बीच खड़े हैं
लेकिन कितनी विषमता है
हम दोनों में
कि तुम
धारा के तीव्र प्रवाह में
बह जाते हो
और मैं
उसी धार पर खड़ी
इसकी थाह पाने में
व्याकुल रहती हूँ ।

इसे क्या शीर्षक दूँ

वह गुलाब का फूल
अपने अतीत की कहानी
कहता,

दुबका पड़ा है
मेरी किताब के बीच
जैसे पड़ा हो
एक-दूसरे
की दूरी को मिटाता हुआ
मेरा तुम्हारा वह स्पर्श ।

काश !

मेरी हथेलियों के दोने पर
तुम्हारे चेहरे का होना
लगा था
अंजुरी के जल पर
चाँद ही उतर आया हो
आकाश सूना हो गया था
अचानक ही
और रात का अन्धकार
तुम्हारा केश बनकर
मेरी हथेलियों से उपट
जमीन पर पसर गया था
जैसे धरती के किसी कोने से
हौले-हौले
यमुना के जमे जल का सोता
फूटकर फैल गया हो ।
हथेलियों में ही
अपना चेहरा छिपाए
तुमने कुछ कहा था
हवा की सिसकारी

उसकी कोमल छुवन
बर्फीली ठंड का एक साथ अहसास
काश
मैं आकाश पर
बहते सोतों पर
हवाओं पर
तुम्हारा नाम लिख पाता ।

शिकायत

गुलाब का सौन्दर्य
जूही की कोमलता
और रातरानी की खुशबू
सब कुछ तो थे
फिर क्या हुआ
कि तुम मुझे
एक गजरे का
रूप न दे सके ।

जब लड़की नहीं होगी

सोचती हूँ
कल तितलियों के पंखों में
रंग कहाँ से आयेंगे ?
कैसे खिलेंगे फूल
सुने बिना तितलियों के गीत ?
कहाँ से आयेगा—

नदियों की लहरों में संगीत ?
और कैसे बहेगें
घाटों के किनारे
पर्व-त्योहारों के सैकड़ों गीत
कैसे बजेंगे बाँस-वन
कैसे बजेगी बाँसुरी
और कैसे थिरकेगीं
हवाएँ
अपनी साँसों में चन्दन की
सारी खुशबू समेट कर
वसन्त कैसे दिखेगा
वृक्ष की ऊँची फुनगियों पर
बगीचे के पौधों पर
कहाँ से आयेगी
जाड़े की गरमाई गुलाबी धूप
जब
दोनों हाथों से
रस्सी के छोरों को पकड़े
तेज-तेज
उसे पाँवों के नीचे से
ऊपर तक उछालती
इन्द्रधनुष-सा वृत बनाती
यह लड़की
धरती पर ही नहीं रहेगी ?

मृत्यु का जीवन

बवंडर आता है
उखड़ जाते हैं पेड़
उखड़ जाता है
बसाया हुआ वन
धरती पर गिरे
घोसलों को देख
बेचैनी में
रोते मंडराते हैं पक्षी
विनाश की एक सर्द छाया
पसर जाती है चारो ओर
और तब
इसी विनाश की कोख से
जनमता है एक महाकाव्य ।

इसीलिए

आने वाला हर पल
मौत की खामोशी
लिए क्यों आता है
क्योंकि
तुम्हारे
पदचाप अब इधर
नहीं आते ।

इन्द्रधनुष काले क्यों हैं

कहाँ और कैसे छूट गये
मेरे जीवन के महाबरी रंग
कितने अरमानों से सौंप गये थे
मेरे पास अमानत की तरह
पर इतना ही चलना पड़ा था
मुझे बार-बार अकेले ही
कि इसे तो
लहू-लुहान होना ही था
रंगों की जगह ।

दुःख

तुम उतरे थे
मेरी आँखों में
जाड़े की धूप की तरह
और फिर
उतरते ही रहे
कुछ इस तरह
कि वह धूप ही
जेठ की धूप बन गई
और मेरी आँखों में
आँसू के दो कतरे भी
शेष न रहे
रोने के लिए ।

बेटी और माँ

नन्हे-नन्हे
कोपल समान
कोमल-कोमल
दूब जैसी
बड़ी हो रही है
बेटी
खुश होती हुई माँ
आखिर/ठूंठ
क्यों हुई जा रही है ?

ठीक उसी समय

चलते-चलते
मेरे पाँव
थक गए हैं
पर मेरा
मन नहीं थकता

जब भी मैं
यह अहसास करती हूँ
कि मेरा प्यार
मेरे करीब आ गया है
तभी वह कहीं ओझल हो जाता है
दूर हो जाता है
अपने पाँव में
पंख बांधकर ।

मैं नदी होती

नदी
जब भी तुम्हें देखती हूँ
तो सोचती हूँ
मैं भी क्यों नहीं हुई नदी
बहती रहती मैं
घाट-घाटों से होकर
कहीं जाल बिछाकर
मछुवारे फाँसते मछली
कहीं किनारे पर
तैरते नंग-धड़ंग बच्चे
और युवक
और कहीं
मुक्ति की आकांक्षा में
नहाते होते सैकड़ों नर-नारियाँ
आचमन करते मेरे जल से
मगर मैं बहती ही रहती
नदी
मैं तुम्हारी तरह नदी माता होती ।

झुठलाओ भी तो क्या

चन्दन की बेल
इस वृक्ष को विशाल
बना रही थी
यह सब कुछ था

बस एक छुवन के कारण
अब झुठलाओ भी तो क्या ।

एक तुम्हारे बिना

सारे प्रश्न
सारे उत्तर
सारी पृथ्वी
सारा आकाश
सभी एक प्रश्न हैं
तुम्हारे बिना ।

यह दुनिया
यह पृथ्वी
यह स्मृति
यह विस्मृति
यह प्रकृति
सभी एक प्रश्न हैं
तुम्हारे बिना ।

मेरा आँचल
मेरा शृंगार
मेरा अस्तित्व
मेरा राग
मेरा द्वेष
सभी एक प्रश्न हैं
तुम्हारे बिना ।

जनमने दो देव शिशु को

इन हवाओं में जो
गंध उड़ती है
उन्हें तम रोको
इन समुद्र में जो
लहरें उठती हैं
उन्हें मत रोको
इन आकाश में जो
तारे टिमटिमाते हैं
उन्हें मत रोको
इस धरती में जो
फूल गिरते हैं
उन्हें मत रोको
इन अंगुलियों में जो
बूंदे गिरती हैं
उन्हें मत रोको
जनमने दो एक
देव-शिशु को
उन्हें मत रोको ।

भाग्य

बटेसर की दुल्हन
बच्चे की भूख से द्रवित हो कर
पड़ोस से मांग लाई है
तीन मुट्ठी आँटा
रोज-रोज का यह दुःख

रोज-रोज की पीड़ा
आखिर कब आयेंगे मेरे स्वामी ?
बटेसर की दुल्हन
सोचती जाती है
आँटा गूँथती जाती है
आँसू बहते जाते है।
और उसे
यह पता भी नहीं चलता
कि कब
कोवा भर आँटा
आँसू से सन-सन कर
सफेद कीचड़ बन गया है
आज का भी
उसका भाग्य
उसके बच्चे का भाग्य
कीचड़ में सन गया है ।

तुम्हारी मुस्कुराहट

मेरे प्यार
तुम्हारे समीप मैं बार-बार आई
तुमसे बार-बार जानना चाहा
सिर्फ तुमसे ही जानना चाहा था
उन प्रश्नों के उत्तर
जो मेरे मन में उमड़ आये थे
तुम्हारे समीप आ कर
लेकिन तुम
विशाल बोधिवृक्ष के नीचे

अधखुली आँखों से
मुस्कृराहट देते रहे
तुम्हारी यह मुस्कुराहट
सुजाता के सारे प्रश्नों का
उत्तर तो नहीं ।

परिवर्त्तन

वह मेरी आँखों से दूर
जो अनगढ़े पत्थर की तरह दिखता था
आँखों में बसते ही
शालिग्राम बन गया ।

अनुभूति

वे दो शब्द
जो तुमने मेरे कानों में कहे थे
आज भी गूंजते हैं
पूरी घाटी में ।

प्यास

आने को जो रोज आता है
कहने को तो रोज कहता है,
पर मेरी प्यास की उत्कटता
क्यों एक विस्तृत

रेगिस्तान बन जाती है
उसके आगमन
उसके प्यार के समन्दर को
सोख जाना चाहती है
इतनी पूर्णता के बाद भी
यह शेष क्यों बच जाती है ?

विवशता

लौट आये हैं पिया
परदेश से
क्योंकि बसंत
आने के साथ ही
टकराये होंगे
उनके भी कानों में
कोयल के पंचम स्वर
मैं सच कहती हूँ
मैंने आने के लिए
खत नहीं लिखा था ।

तुम्हारी भूल

तुमने मेरे आस-पास
घने जंगल-से
पेड़ लगा दिये थे
कि बाहर की रोशनी
अंदर न आ सके

शायद तुम
यह भूल गये थे
कि सूर्य
जमीन से उठते हुए
माथे पर भी आता है
और तेज सीधी धूप से
वन का कोना-कोना
शीशमहल बन जाता है ।

नदी

मैं अपनी ही
स्वतंत्र गति में
बहने वाली हूँ
बेसुध, बेखबर
मत लगाओ मुझ पर
कोई अंकुश
कोई बांध
तुम नहीं जानते
मेरी स्वतंत्रता को
बाधित करने का दुष्परिणाम
एक दिन बांध तोड़
बहा ले जाऊँगी
तुम्हें ही नहीं
कई गाँव ।

धरती

जीवन में ऊँचाई
मेरा एक स्वप्न है
किन्तु हर डग भरने के बाद
रहना इसी धरती पर चाहती हूँ ।

यह धरती एक ठोस धरातल ही नहीं
एक ठोस सपना भी है
जो गिरने वाले को अपनी
गोद में समा लेती है ।

ऊँचाई पर उठने वाले हर शख्स को
आखिर धरती ही नसीब होती है
कितनी भी ऊँचाई पर रहूँ मैं
अन्ततः धरती में समाना है मुझे ।

मैं ठोस धरती पर
अपने पाँव जमाये रखना चाहती हूँ
और वहीं से आकाश की
ऊँचाई छूना चाहती हूँ ।

नागफनी के फूल

मेरा एक सच है
एक बहुत ही
खूबसूरत सच
जो झूठ-सा लगता है

नदी रेगिस्तान क्यों हो जाती है

रेगिस्तान में
खिलते हुए कैक्टस
कैक्टस पर खिलते फूल
आँखों में गड़ते हैं
नागफनी के फूल
मुझे फूलों से प्यार है
हाँ, मुझे तुमसे प्यार है ।

क्या होता है इससे

मैंने
एक जलता हुआ दीया
समन्दर की छाती पर रखा है
जानती हूँ
समन्दर हुआ तो क्या हुआ
दीये का भार भी नहीं
सह पायेगा।
इसकी लहरें दीये को डुबोयेंगी
लौ बुझेगी
समन्दर की अतल गहराइयों में
अंधेरा ही फैलेगा
मगर इससे दीये का
अस्तित्व नहीं जायेगा
वह समन्दर की छाती पर नहीं
उसके तल में होगा ।

आदिम आकांक्षा

जब कभी देखती हूँ
रेत पर चिकने
बालू का उभार
लगता है जैसे
किसी मुग्धा के
उन्नत उरोज।
चाहती हूँ
सर रखकर
उम्र भर इसे
निहारती रहूँ ।

जख्म-सुख

जख्म दे कर
यह मत कहने आया करो
कि जख्म दिया मैंने
मेरी नादानी थी
मैंने दिल की हकीकत जान ली
यह तुम्हारी मेहरबानी थी ।

पावस में

बरसते हैं जब कभी
सावन की फुहार
तो उभर आते हैं
गीली मिटटी पर
कुछ पदचिन्हों के भी उभार ।

घुंघरू

एकान्त में
बहुत ही करीब होते हैं
मेरे तुम्हारे संबंध
और जब उठती हूँ मैं
घुंघरुओं से कहीं ज्यादा
और रात भर
थरथराते हैं
मेरे स्वपन ।

संदेश

सूनी घाटी में एक धीमी-सी आवाज गूंज गई थी
फैली हवाओं में चंदन की खुशबू बिखर गई थी
तुम्हारे आने की खबर जो दे दी गई थी
खाली फ्रेम में एक तस्वीर जड़ गई थी
शान्त झील में जो एक कंकड़ी गिर गई ।

भूल

श्वेत कमल की पंखुड़ियों पर
तुमने महावर रचे
अपनी अंगुलियों से
एक रेखा खींच दी थी
और पूरा कमल जवाकुसुम-सा
रक्तिम हो गया था
मैंने व्यर्थ ही
रंगों को धोना चाहा था
ऐसा करके तो
सरोवर के ही सारे जल को
मैं लाल कर गई ।

बदलाव

जिस दिन पकड़ी थीं
तुमने मेरी कोमल नरम अंगुलियाँ
उसी दिन से भर गई हूँ मैं
एक कोमल अहसास से
और रिक्त ही नहीं हो पाती हूँ इससे
कि मेरी ये सारी अंगुलियाँ
चंदन के छोटे-छोटे बिरवे हो गयी हैं ।

आदिम भय

खुली आँखों से
स्वप्न देखा करती थी
उसीमें डूबती इतराती रहती थी
कि अचानक तुमने मुझे
जवाकुसुम कर दिया
पर क्या हो गया है
अब तो बस डरती रहती हूँ
कि फूल होने के बाद
मुरझा न जाऊँ
इससे तो अच्छा था
मैं कोमल कली बन कर
एक डाल से जुड़ी रहती
लंकिन तब कहाँ से लाती
यह रंग,
यह रूप ?
तुम्हारा
मुझे जवाकुसुम बना दिया जाना
स्वीकार है ।

फैसला

तुम
हाथ भर के मेरे आंगन में
रोप गये थे
तुलसी का जो पौधा
वह रातोरात

किस तरह पीपल का वृक्ष हो गया
उसकी बड़ी-बड़ी शाखायें
दूर-दूर तक
देखते-ही-देखते फैल गयीं
जिसे घर नहीं था
उसके लिए
वह घर बन गया
और कई-कई लोगों के लिए
आँखों की किरकिरी
वे ही लोग
जिनके लिए
(पीपल की विशालता बोझ हो गई है)
वे काट रहे हैं
शाखायें
गिरा रहे हैं पत्ते
वे उन्हें काटते-काटते
मेरे आंगन तक पहुँच सकते हैं
यही सोच कर
मैं पीपल के धड़ में
समा गयी हूँ
कि इसकी जड़ें
इसका धड़
कटने नहीं दूंगी
अपने कट जाने तक
पीपल का यह वृक्ष
जिसे तुम
मेरे छोटे से
आंगन में लगा गये थे ।

पुरस्कार

अंधेरे में एक दीप जलाकर
मैं कब से कर रही हूँ इंतजार
रात का अंधेरा
धीरे-धीरे
बढ़ता रहा
और डसती रही मुझको काली रात
अचानक चली तेज हवा
दीपक बुझ न जाए
हाथों का घेरा बनाए
उसे घेरे रही
इस सोच में
तुम इस अंधेरे में खो न जाओ
और सुबह होने तक
मेरे दोनों हाथों पर
फफोलों के सिवा क्या शेष था ।

तुम्हारी हँसी

तुम्हारी हँसी
चूड़ियों की खनक-सी
घाटियों में गूंजी थी
जैसे ओस की एक बूंद
फूलों की पंखुड़ी पर गिरी थी
मैंने चूड़ियों की खनक में
अपने कंगन की खनक
मिलाई थी

फिर मुझे हँसी की गूंज का पहाड़
दिखाई दिया था
लेकिन
मैंने आँखें खोलीं
तो वहाँ
न घाटी थी
न फूल थे और
न ही पहाड़ था
बस थी तो
सिर्फ
मेरी-तुम्हारी हँसी ।

देखते-देखते

तुमने मेरे आंचल के कोर पर
जो एक नाम लिख दिया था
फिर तुम न जाने कहाँ गये
समय बीतता गया
और नाम लिखा
मेरा आंचल
रामनामी बन गया ।

जड़विहीन पीपल

यह
एक दीपक है
जो जलता रहता है
बिना तेल के ही।
यह
एक बंधन है
जो बंधा रहता है
बिना गाँठ के भी।
वह एक सच्चाई है
जो फैलती रहती है
बिना बहस के भी।
यह
एक समुद्र है
जो उफनता रहता है
बिना तूफान के भी।
यह
एक मोती है
जो गूंथा जाता है
बिना चाँदी के भी।
यह
एक विश्वास है
जो पनपता रहता है
बिना सोच के भी
जानोगे वह
क्या है ?

नये साल में

बहुत दिया है बीते क्षणों ने
बीते पलों ने
साल गये जो
उनका अभिनन्दन है
और नये जो आयेंगे पल
नया साल
लेकर सौ खुशियाँ
उनका भी अभिनन्दन है
उन दुःखों का भी
जिनके बिना जीना
कितना दूभर हो जाता है ।

नारी

नारी
पूजते हैं पुरुष
तुम्हारी
शक्ति को
आते हैं मंदिरों में
दिखलाने
अपनी भक्ति को
घर में कब पूजित होगी ?

नारी (२)

नारी
समेटे रहती हो
कितने ही दर्द को
सुलगती
पिघलती
रहती हो
फिर भी रहती
कितनी सर्द हो ।

लेकिन

मेरे पाँव
रुक गये थे
जब मैं
आगे बढ़ना चाह कर भी
आगे नहीं बढ़ पायी थी
क्योंकि मेरे पाँव में
बेड़ी पड़ी थी
सामाजिकता की
ढेर सारे बंधनों के बीच
मैं तुम्हें संपूर्ण रूप से
प्राप्त कर गयी थी
सिर्फ एक नजर के धोखे से ।

चूक

बारिश की
एक बूंद के इंतजार में
नख से शिख तक
शृंगार कर
सो गई मैं
अपने द्वार पर
नींद खुली थी
तब
जब
सावन
बीत गया ।

विरोध

मेरा मन
ढूंढता है
तुम्हें शून्य में
बड़ी व्याकुलता से
लेकिन तुम हो कि
मुझसे जब भी
मिलते हो
ढूंढते रहते हो
मुझमें एक आधार ।

क्या बतलागो तुम

सीता
तुमने नारी होकर
इतना अपमान सहा
क्या तुम अपनी
सहनशीलता का
परिचय दे रही थी
या फिर तुम सचमुच
एक पुरुष की परीक्षा
ले रही थी कि
कितना तपा सकते हो मुझे
मैं तो साक्षात् शक्तिरूपा हूँ ।

मेरा देश

रोज मेरे स्वप्न में
आजकल एक त्रिभुज उभर आता है
अब मैंने ठीक-ठीक इसे पहचान लिया है
यह त्रिभुज नहीं
मेरा देश है
कश्मीर को सर की तरह उठाये
आसाम और गुजरात को अपनी बांहें बनाये
अपने दोनों पांवों को जोड़े
मेरा ही देश है
हाँ, हाँ मेरा ही देश है
रोज कहता है मेरा देश
मुझसे मेरे स्वप्न में,

क्या तुम्हें मेरी आँखों में
आँसू दिखाई देते हैं ?
क्या मेरे सर पर
खून के छींटे दिखाई देते हैं ?
क्या मेरी हथेलियों पर
कीलों के दाग दिखते हैं ?
मैं कहती हूँ
हाँ देखती हूँ
लेकिन मेरे देश
तुम यह तो बताओ
किसने तुम्हें ईशु बनाया
किसने गांधी की तरह
तुम्हें गोलियाँ दागी हैं ?
देश कुछ नहीं बोलता
सिर्फ इसकी आँखें कुछ कहती हैं
क्या कहना चाहती हैं
कि मैनें ही इसे ईशु बनया है ?
मैंने इसे गांधी बनाया है ?
इनकार भी तो नहीं कर सकती हूँ
इतिहास मेरे ऐसे अपराधों का गवाह है
प्रायश्चित में मेरी आँखें बहने लगती हैं
तब मेरा देश मुझसे कहता है
तुम्हारे आँसू ही तो
मेरे जख्म धोने को
काफी नहीं हैं
आजकल मैं रोज स्वप्न में
अपने लहू से जन्मे
बन्धुओं को लेकर
द्वार-द्वार घूमा करता हूँ
एक महायज्ञ करना है मुझे

मैं देखती हूँ
अपने स्वप्न में
आजकल रोज हजारों हजार लोग
आते हैं मेरे पास
देश के पास
यह कहते हुए
संघं शरणं गच्छामि
धम्मं शरणं गच्छामि ।

नदी और बादल

नदी से लिपटा हुआ था
बादल
एक अरसे से।
आज बादल
नदी का दामन छोड़
भागा जा रहा है
नदी ने करवट बदली
बादल को देखा
और उसे देख मुस्कुरा पड़ी
मन ही मन सोचा—
ठीक है जाओ
तुम जहाँ जाना चाहो
आखिर तुम्हें आना है
पुनः मेरे ही करीब
क्योंकि तुम्हारा अस्तित्व
अन्ततः मुझमें ही
व्याप्त है ।

शहर जिंदा है

मैं ढूंढती हूँ
अपने इस शहर में
अपनी छोटी-सी वह हवेली
जिसमें मेरे देश की संस्कृति
सोई रहती थी
रेशम की चादर, सोलहो शृंगार करके
मैं ढूंढती हूँ
अपने इस नगर में
महाभारत के कालजयी कर्ण को
जिसने माता कुंती को
पाँच पुत्रों की माँ
बने रहने का वर दिया था
देह छील कर
कवच-कुंडल दे दिया था
इन्द्र को।
मैं ढूंढती हूँ
शहर के
एक कोने से लेकर
दूसरे कोने तक
वासूपूज्य की आत्मा को
जिन्होंने
अहिंसा और प्रेम का
संदेश दिया था।
सारी सृष्टि को ही
मैं ढूंढती हूँ
विक्रमशिला से लेकर
अजगैबी तक की कंदराओं में

सबरपा और जहु ऋषि के संदेशों को
कहाँ मिलेंगे मुझे
समुद्र के मंथन से निकले
वे चौदहो रत्न
किसने बांट लिया सबकुछ
छीन कर ले गया
सारी चीजें हमसे
और दे गया है मुझे
हिंसा, दंगा, अविश्वास, अशांति।
किस गली में खो गई
अपनी संस्कृति की किशोरी ?
क्या किसी ने
उसका गला दबा दिया
कौन कहता है यह
कि मुझे अब वे
रत्न नहीं मिलेंगे
मेरे शहर की बहन
मेरे शहर के भाई
आओ हम सब
उसकी तलाश करें
मुझे यकीन है
संस्कृति की किशोरी
अभी जिंदा है
उसे खोजें
उसे मार देने के पहले ही ।

प्रार्थना

तमस में घिरा हूँ, गहन अंधकारा
नहीं व्योम में है कहीं एक तारा
प्रभो, यह हटा दो प्रलय का अंधेरा
खुले, खिल के आए सृजन का सवेरा
डरे, डर के भागे सभी अपशकुन ही
रचे सृष्टि कविता विभा की, ये स्याही
बहे रोशनी की वही शांत धारा
तमस में घिरा हूँ; गहन अंधकारा ।

उठे स्वर हमारे गगन को गुंजाए
धरा पर निखिल स्वर्ग ही दौड़ आए
हँसे प्राण, वीणा के सुर में मधुरतम
तभी सिद्ध होगा भी माधव महत्तम
खिले घास के फूल, फूलों का पथ हो
उसी रास्ते पर ही जीवन का रथ हो
प्रभो, पर जरूरत है, तुम हो सहारा
हटा जा रहा है गहन अंधकारा ।

अंगिका गजल

शासन–खाई-चभच्चा रँ
रखियोॅ गोड़ तों अच्छा रँ

देश देखी केॅ कानी भरतै
कोय्यो साधू सच्चा रँ

मंत्री तेॅ बड़का विभाग रोॅ
बतियावै छै बच्चा रँ

जे भी पकलोॅ फोॅल तोड़ै छी
निकलै छै सब कच्चा रँ

आँख मुनी केॅ मत चल 'आभा'
डेग-डेग पर खच्चा रँ ।

अंगिका गजल

केन्हों भुतहा गाँव लगै
शील होय गेलों पाँव लगै

हर पाशा पर पांडव केरों
खाली गेलों दाँव लगै

पत्थर फेकलों करों नै कभियो
केकरो ठाँव-कुठाँव लगै

की होलै कि कोयलो बोली
काँव-काँव बस काँव लगै

समय देखी नै लागौं केकरो
'आभा' के तें झाँव लगै ।

ताँका–शतक

(ताँका-संग्रह)

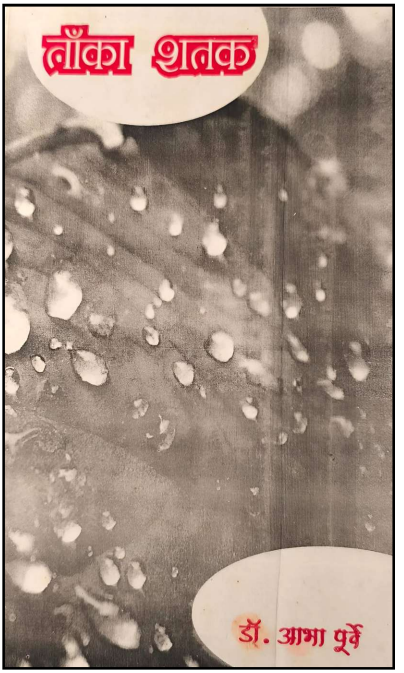
बाँका शतक
डॉ. आभा पूर्वे

१
ग्रीष्म तो आया
आग भी उठा लाया
दहकी धरा
सूखे ताल-तलैया
जलती अब नैया ।

२
ग्रीष्म का मन
कहीं जल न जाए
खिले शिरीष
तो केवड़े महके
ताकि कम दहके ।

३
तालाब ही क्या
सूख रही नदियाँ
सूखे कुआँ हैं
रेत हैं या आगिन
प्यास लगे : बाघिन ।

४
ताड़ महके
कटहल के साथ
लीची को लिए
जामुन को क्या छुआ
खजूर मस्त हुआ ।

५
शीतल हवा
चन्दन का लेपन
खस का घर
आओ ग्रीष्म, स्वागत!
कर्पूर की है छत ।

६
मोर बेसुध
बिजली जो छिटकी
मेघ जो आए
पछिया परेशान
वर्षा से हलकान ।

७
कदम्ब खिले
कुटुज हरसाया
नीलवन भी;
अर्जुन हँसे ऐसे
तपस्वी मन जैसे ।

८
दादुर शोर
कहीं झिंगुर बोले
किसकी बातें
करे जी खोल कर
जी हल्का बोल कर ।

९
पावस क्या हो ?
महज एक रितु
या प्राणाधर
धरती खुश क्यों है ।
नौ सुहागिन ज्यों है ।

१०
बरसो मेघ
पर ऐसे नहीं कि
हो ताण्डव ही
रूप न लो प्रचण्ड
कि हो उत्तराखण्ड !

११
सिलोटी मेघ
क्वार तक बरसो
धरती दिखे
ज्यों कंचन की थाली
कुलदेवी की पाली ।

१२
मेघ गरजे
हरियाए धरती
पर्वत झूमे
वनों ने खोले पाँखें
चमकीं आज आँखें ।

१३
शरत ऋतु
मेरी सहेली बनो
तुम-सा हँसूं
मन निर्मल दिखे ।
कोई कविता लिखे !

१४
शरत आओ
पावस लौट गया
मेघों को लिए;
तुम्हें डर किसका
लगाओ न ठहाका !

१५
कमल खिले
श्वेत नील, रक्तिम
शरदागम
नदी हुई पतली
विरह में दुबली ।

१६
काश क्या झूमें
झूम गई धरती
लजाई हवा
धूलहीन पथ है
ये किसका रथ है !

१७
शरत ऋतु
या तुलसी मंजरी
या खंजन ही
पके धान की गंध
थे बंद, खुले छन्द ।

१८
चिरई चुप
मछलियाँ सहमीं
लताएँ मौन
हेमन्त के डर से
कौन जाए घर से ।

१९
ठिठुर गई
ठहरी हुई हवा
मिल गया था
पिछुवाता हेमन्त
वौराया हुआ कन्त ।

२०
किसका हुआ
किसका होगा यह
हेमन्त ही है
आग ही लगायेगा ।
यूँ ही नहीं जायेगा !

२१
ठिठुर गये
अंग-अंग काया के
सुन के नाम
निकट है शिशिर
चंचल जल थिर ।

२२
जंगल चुप
ठिठुरते पर्वत
साँसे हैं बर्फ
जमती-सी हवाएँ
ये खग कहाँ गए !

२३
कुहासे भरे
ये दिन और रातें
झूके-से पत्र
ओसों की बूंदें, टप
कहीं नहीं है 'छप' ।

२४
ओस की बूंदें
दूबों में सिहरन
रात से ही हैं
काँपती हवाएँ हैं ।

२५
कस्तूरी लाओ
शिशिर पर डालो
शांत तो हो
फिर से बौरायी है
आग लिए आई है ।

२६
दक्षिणी हवा
अंगड़ाई ले उठी
सारी दिशाएँ
चन्दन से पूरित
श्याम हो गया सित ।

२७
सरसों खिली
खेत रंगे फिर से
हारिल आए
पपीहे की पुकार
मद का लिए भार ।

२८
सुग्गे का टें टें
भ्रमरों के गुंजार
मैना न चुप
वसन्त बौराया है
बौर ओढ़ आया है ।

२९
साथ साथ ही
कनेल-कचनार
महुआ हँसा
माधवी लता बोली
भरे, बौरों की झोली ।

३०
कोयल कूकी
अमराई सिहरी
बौर महके
सहजन की हँसी
ज्यों आई हो उर्वशी ।

३१
तिलक लगे
तिलक के ये वृक्ष
राजा वसन्त
खिले वकुल कूल
अशोक न दे तुल ।

३२
गन्धों का देश
परागों का शासन
फूल प्रहरी
वसन्त राजा बना
जो है चैत का जना ।

३३
समझो अब
प्रकृति क्यों है ऐसी
गुस्साई-आग ?
लीले प्रान्त-प्रान्त को
शान्त औ अशांत को ।

३४
जो रुके नहीं
काटते रहे गिरि
और वन को;
कट जाओगे, सुनो
यूँ मूढ़ मत बनो ।

३५
उत्तराखंड
एक प्रश्न चिह्न है
सभ्यता पर
जो आज की नयी है
खूंखार-निर्दयी है ।

३६
धर्म के नाम
पहाड़ को काटोगे
पछताओगे,
जंगल उग जाए,
क्या पर्वत भी आए ?

३७
देवता-देवी
कहाँ पर नहीं हैं
घर में भी हैं
वे तो गाँवों में भी हैं
धूप-छाँहों में भी हैं ।

३८
गिरि पर गाँव
इतना तो ठीक है
शहर हो नहीं,
धर्म मौज नहीं है
देव हर कहीं है ।

३९
पहाड़ पर
यह वन-विनास
क्या हो रहा है !
महाप्रलय होगा
और भी लय होगा ।

४०
पहाड़ क्रुद्ध,
नदियाँ भी क्रुद्ध हैं,
जंगल क्रुद्ध !
किसकी आहट है ?
समय विकट है ।

४१
पहाड़ रोया
आकाश भी रोया था
नदियाँ रोयीं
जब फूटा प्रलय
डूबा भव अक्षय ।

४२
गिरते गिरि
बरसतीं नदियाँ
महाप्रलय !
भयावह दुःस्वप्न
वह रुद्र-नर्तन ।

४३
देवताघर
ऐसा उदास क्यों है ?
श्मशान-सा ही !
ये लाशों का जंगल !
पिशाचों का मंगल !

४४
देखा नहीं था
मृत्यु का महारास
क्षत-विक्षत;
काल का अट्टहास !
लाशें हैं पास-पास !

४५
क्या हो रहा है
बच्चे मर रहे हैं
जहर खा के;
सत्ता बहस में है
कोई न बस में है ।

४६
बच्चियों पर
दुराचार की हद
सत्ता खामोश
कानून का खेल है
भीतरिया मेल है ।

४७
लाश तो मिली
अपराधी फरार
शासन मौन
जनता अवाक है
जिसका था, घाव है ।

४८
गौरैया गान
सुनाई नहीं देता
न काँव-काँव
देव ये क्या हो गया
न घोसला, न बया ।

४९
न बरगद
न पीपल की छाँव
न नीम दिखे
कहाँ गया पाकड़
नाचे भूत धाकड़ ।

५०
कमल-वन
नहीं दिखतें कहीं
पोखर तक
कहीं झील भी नहीं
सब; जैसे, चुआँड़ी ।

५१
नहीं बचेगा
पेड़ का एक पत्ता
यहाँ तो अब
पेड़ ही संकट में
जल कहाँ घट में ।

५२
माँ और देवी
धरती ये हमारी
फिर ऐसे क्यों
हमसे भयभीत
गाती है शोकगीत ?

५३
टूटे हैं पंख
हारिलों के, सुग्गों के
गौरैयों के भी
सहमी-सी कोयल;
शिशिर ही अनल।

५४
प्रीत प्यासी-सी
मन का चैन प्यासा
घृणा घूरती
यह कैसा भय है
काल-सा समय है ।

५५
जिसको देखो
सहमा-सहमा-सा
शशक जैसा
समय शिकारी है
सब पर भारी है ।

५६
हौसला नहीं
हारो हमारे मीत
चलते रहो
जीवन जो मिला है
समझो, फूल खिला है ।

५७
पत्थर मन
समय पत्थर है
प्रेम पत्थर है
विश्वास छलना है
अकेले चलना है ।

५८
तुम कहाँ हो
किस देवालय में
किस मठ में
क्या मन में नहीं हो ?
ये अब तुम्ही कहो ।

५९
इतने मठ
इतने धर्मस्थल
इतने भक्त
फिर भी शांति नहीं ।
कोई भी क्रांति नहीं !

६०
अखबार में
रेडियो-टीवी पर
यही खबर
अनहोनी हो गयी;
मानवता सो गयी ?

६१
वे पल-दिन
जो बचपन के थे
कहाँ खो गये!
दूर-दूर भी नहीं
परछाई भी कहीं ।

६२
बीतते दिन
बीतती हुई उम्र
जाती खुशियाँ
नहीं लौटने को, हैं
गुनगुनाने को हैं ।

६३
पकड़ूँ कैसे
भगाते हुए पल
हटा बाँहों को
देख भी नहीं सकूँ
फिर कैसे पकड़ूँ ?

६४
क्या हो जायेगा
जो तुम ही लौटोगे,
रुकना किसे
समय ही न रुके ।
सब मोहरे चुके ।

६५
फूल हँसते
हवाएँ उन्मत्त हैं
गूंजते स्वर
सरसराते स्वप्न
बोझिल नींद-घन ।

६६
गिरते वृक्ष
ये गिरते पहाड़
कटते वन
ये सूखती नदियाँ;
आग-चिनगारियाँ ।

६७
सब मिलेंगे
अन्न और आवास
पर पहाड़ ?
फसल तो नहीं है !
महल तो नहीं है ।

६८
कौन देवता
किस जगह में है
कौन क्या कहे ।
लेकिन कहीं तो है
क्यों है लीवन-लय ?

६९
जीवन-लय
किसी का संकेत है
सब कहते
में ही न कहूँ, तो क्या
जीवन प्रभु का दिया ।

७०
जीवन क्या है
कभी जानना चाहा
नींद आ गयी;
नींद जीवन है क्या ?
क्या लिया और दिया !

७१
किसके लिए
जीवन समर्पित
कौन है वह ?
कालपुरुष कैसा ?
सुरों में बंधा, जैसा !

७२
महान आत्मा
वैसा ही महाकवि
तुलसीदास
ज्ञान के रत्नाकर
कला के निशाकर।

७३
देश कहाँ है
कागज के दुकड़े
पानी में सटें
कहीं जाति का प्रान्त
कहीं भाषा से भ्रान्त ।

७४
नहीं हैं याद
महाराणा प्रताप
वीर शिवाजी
पुथ्वीराज चौहान
क्यों ? कहो भगवान !

७५
थी लक्ष्मीबाई
सरोजनी नायडू
इसी देश की;
अहिल्या बाई आओ ।
भारत को बचाओ ।

७६
देश किसका
जो देश पर मिटे ?
या जो लूटे खसोटे ?
मौन क्यों धरती माँ ?
भगत सिंह कहाँ ?

७७
आओ हे राम
अवध है उदास
सब श्रीहीन
यह कैसा है रण
हँस रहा रावण ।

७८
फिर से आओ
वीर सावरकर
माता बुलाए
सीमाएँ भयभीत
गूंजे, भारत गीत ।

७९
प्रान्त-प्रान्त को
अपनी ही है चिन्ता
तब क्या होगा
अपने स्वदेश का
अन्त नहीं कलेष का ।

८०
कविता वही
दिल-दिमाग छूए
रस बरसे
समाधि-सुख मिले
चित्त कमल खिले ।

८१
कवि तो वह
जिसकी वाणी, गीत
मन हो वेद
विश्व जिसका घर
कवि वही अमर ।

८२
किसको भूलूँ
किसको याद करूँ
सोच में मरूँ
मन ये खिलौना है
जो होना सो होना है ।

८३
हिन्दी बड़ी माँ
अंगिका मेरी माँ है
इसे समझो
मैं दोनों की सन्तान
दोनों देवी समान ।

८४
मेरा लिखा ही
मेरा इतिहास है
कोई क्यों लिखे
देशवासियों जानो
भारत पहचानों ।

८५
भारत क्या है
मन हो जब एक
तभी भारत
आओ, मन बनाएँ
हम एक हो जाएँ ।

८६
हिन्दी को लिए
उठो हिन्दुस्तानियो
लोकभाषाएँ
तुम्हारे ही साथ हैं
मजबूत हाथ हैं ।

८७
सरहपाद
अगर अंगिका है
तो हिन्दी भी है
राहुल बाबा कहें
फिर भेद क्या रहे ।

८८
मेरे लिए तो
देवता से कम क्या
सीमा के वीर
भारत के लाल हैं
शत्रुओं के काल हैं ।

८९
यह मत कहो
कौन शहीद हुआ
कहाँ का था वो
भारत का लाल था
भाला संग ढाल था

९०
बहती नदी
सबका जीवन है
संजीविनी है
रोको या बांधो नहीं
लय ला दे न कहीं ।

९१
'रूप अरूप'
नयनों का अंजन
केतकी गंध
तिलक चंदन का
वरदान मन का ।

६२
हिन्दी जोड़ेगी
भारत की भूमि को
वेदवाक्य है
हिन्दी हिन्द-मन है
संजीवनी धन है ।

६३
पढ़ के देखो
कामायनी-साकेत
कविता क्या है
दीपाराधना ही है
प्राती-सान्ध्य गीत है ।

६४
कविता हो तो
बस ऐसा ही जैसा
'काव्याभा' है
भाव-छन्द का साथी
जीवन की प्रभाती ।

६५
सोचना होगा
हम कहाँ आ गये
चलते हुए
न साथी रहे साथ
न हँसी की बारात ।

९६
साथ रहते
अजनबी हो गये
ये क्या हो गया
सम्बन्ध लगे बासी
तनहाई-उदासी ।

९७
खुशियाँ कहाँ
दुख दौड़ते मिले
हाँफता मन
सम्बन्ध सारे चूर
समय कैसा क्रूर !

९८
जहाँ अपने
आस्तिन के साँप हो
कहो जीयें क्यों।
मृत्यु सच, सच्चा है
मरना ही अच्छा है ।

९९
उदास नहीं,
जिन्दगी से मिलेंगे
कभी-न-कभी
लिए चलो सपने
मिलेंगे ही अपने ।

१००
जागो देवता
जागो धरती माता
जागो मनुज
काल भयावह है
ज्यों कालेयदह है ।

नागफनी के फूल

गजल-संग्रह

नागफनी के फूल

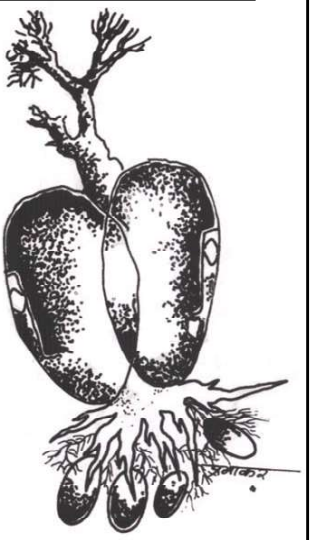

आभा पूर्वे

१.

दुनिया का जो मेला है
चोर-सिपाही-खेला है ।

कैसे कह दूँ समय शांत है
चलता ले कर ढेला है ।

उसका सपना और बढ़ा है
जिसके हाथ अधेला है।

हथियाने की बात जहाँ है
गुरु से आगे चेला है ।

भरी भीड़ में उसको देखा
मुझको लगा अकेला है

नींद नहीं आती आँखों को
घोर निशा की वेला है।

मुझको अपनों ने गाली दी
ऐसा दुःख भी झेला है ।

२.

जीवन शूल-बिछौना है
फिर फूलों का दोना है।

दीवारें सब गिरी हुई हैं
बचा हुआ एक कोना है।

दुख तो ओझा-गुनी हुआ है
सुख भी जादू-टोना है।

मुँह से सच-सच निकल गया तो
जीवन भर ही रोना है।

यह भी पता नहीं है मुझको
क्या पाना क्या खोना है।

दुःख को पीतल क्यूँ बोलूं मैं
वह तो असली सोना है ।

कल की चिन्ता कौन करे अब
जो होना है होना है ।

३.

नदियों में जब धार नहीं
उतरूंगा मैं पार नहीं ।

दुख में आँसू ही न छलके
ऐसा तो संसार नहीं ।

अपने को सन्यासी कहता
छोड़ा है घरबार नहीं ।

प्यार छिपा लूं भय के मारे
इतना भी लाचार नहीं ।

हरदम धोखा खा जाते हो
छाया है, दीवार नहीं ।

कितने दिन वह देश चलेगा
जिसकी हो सरकार नहीं।

प्यार जताने वह बैठा है
जिसको आता प्यार नहीं।

४.

कैसा सूरज कैसा भोर
घना तमस है चारो ओर।

कैसा होगा नगर क्या कहूँ
गाँवों में जब ऐसा शोर।

हंसी अधर के कोनों में है
भीगे हैं आंखों के कोर ।

आंधी की गति मोड़ चलूं मैं
रहा कहाँ अब वैसा जोर।

देवस्थल के पीछे छुप कर
जमा हुआ है आदमखोर।

अनजाने है देश-डगर सब
बादल-बिजली भी घनघोर।

छितराए हैं कुसुम भाव के
रिश्ते की टूटी हैं डोर ।

५.

सबको सब से भय-डर है
यही कथा तो घर-घर है।

अपवादों की बात अलग है
बाकी तो दिल पत्थर है।

क्या वसन्त ही आया, जबकि
साथ ना लाया मंजर है।

यहाँ प्रजा क्या, चीतल जैसी
सम्मुख शासन-अजगर है।

सत्ता आगे न्याय नीति को
मैंने देखा थरथर है।

मैं भी उसको जान रहा हूँ
बोल रहा जो हर-हर है।

मेरा रुदन कोई ना जाने
ढोल, मंजीरा, झांझर है ।

६.

जिसकी ताकत, उसका घन
लोकतंत्र का पागलपन।

सब दिन सूखा-सूखा-सा
कब सावन है, कब अगहन।

नागफनी का जंगल भी क्या
कभी बनेगा चन्दन वन ?

कब तक किसके साथ रहा है
हीरा, मोती या कंचन ?

सावन तो आया है लेकिन
सता रहा मन को राशन।

कल बोलेगा बच्चा बच्चा
लौटाओ मेरा बचपन,

नई सदी में यह भी समझो
प्यार यहाँ है काला धन ।

७.

कितना यहाँ अंधेरा है
किस योगिन का फेरा है।

मेरा, तेरा, उसका जीवन
एक रात का डेरा है।

सदियों बीत गयीं, रंग अब तक
किसने चित्र उकेरा है ?

सबके दिल को छीन ले गया
कितना समय लुटेरा है।

एक फूल है खिला बीच में
नागफनी का घेरा है।

तुम रातों की बात कर रहे
दिखता नहीं सवेरा है।

सब कुछ ठीक ठाक कर देगा
दुख तो वही ठठेरा है।

८.

जितना नहीं है गोली में
जहर भरा है बोली में।

समय बहुत शैतान हो गया
खंजर रख लो चोली में।

रुदन भरा है राजभवन में
हँसी-ठिठोली खोली में।

रंगों के बदले में यह क्या
खून बह गया होली में।

कहाँ पता था यह भी होगा
लाश मिलेगी डोली में।

धनवानों की किस्मत देखी
इस फकीर की झोली में ।

९.

जैसे भी हो चलना होगा
आगे और निकलना होगा।

मिलने पर भी दुख रहता है
न जाने कब मिलना होगा।

जोर लगा कर तुम देखो तो
चट्टानों को हिलना होगा।

प्रेम मुहब्बत से चिढ़ता था
शायद उसको दिल न होगा।

अब गुलाब जब बने हुए हो
काँटो पर ही खिलना होगा।

उस दिन समझो मौत हो गई
जिस दिन मुँह को सिलना होगा

१०.

व्योम पर हो जब चरण
क्या धरा पर संचरण ।

भाव के सम्मुख रहा
हारता ही व्याकरण।

मुक्ति की इच्छा करो
सामने तारण-तरण।

झूठ को जब सच करूँ
मृत्यु को कर लूँ वरण।

पुण्य को ही पाप बोले
कलयुगी यह आचरण।

इस तिमिर में देवता का
हो रहा है जागरण।

अब उठाओ सत्य पर से
झूठ का यह आवरण।

११.

ठोस जगत भी पानी है
दुनिया आनी-जानी है।

संगत किसकी कितनी पक्की
मैंने भी पहचानी है।

'भाग्य बड़ा बलशाली' कहना
यह भी तो नादानी है ।

औरत ही है वीणापाणी
काली और भवानी है।

किस्मत रही विरोधी लेकिन
हार कभी ना मानी है।

औरत को मत इतना समझो
सास, बहू, जेठानी है ।

मैंने अब तक हार न मानी
समझो नहीं कहानी है ।

१२.

जैसी अभी सियासत है
जनता पर वह आफत है ।

धन तो यहाँ सुरक्षित ही है
खतरे में बस इज्जत है ।

कोर्ट कचहरी सब कुछ ही है
न्यायी-न्याय बदारत है ।

शासक-शासित दो भागों में
किसका आखिर भारत है ?

जीने का उद्‌देश्य नहीं कुछ
उस जीने को लानत है ।

कहाँ रहे यह प्यार-मुहब्बत
भरी हुई जब नफरत है ।

मुझको झूठ सुहाता कब है
सच कहने की आदत है ।

१३.

एक तुम्हारा जो मुझे, नहीं मिला है पास
आंसू-आंसू हो गया, जीवन का इतिहास ।

कल तक घर के लोग थे, बैरी किया जो प्रीत
अब तो सारे गाँव-घर, हैं सौतिन औ सास ।

नेह लगाई क्या किया, दिल ऐसा बेचैन
सांसें-सांसे भी नहीं, हवा हुई उनचास ।

किससे-किससे जा कहूँ, अपनी हालत आग
मन भीगा नाचे फिरे, तन है तुलसीदास ।

सबके बैठी बीच भी, चित्त बहुत है दीन
कोई समझेगा नहीं, मेरा यह वनवास ।

जब से जाना नेह को, धरती हुई सरंग
मेरी मुट्ठी में हुआ, पूरा वह आकाश ।

प्यार तुम्हारा जो मिले, तो तोड़ूँ मैं ध्यान
तोड़ न सकती मृत्यु भी, आभा का उपवास।

१४.

अब जब आया है चढ़ा, नभ पर घन आषाढ़
मन तो पहले ही हुआ, अब है तन आषाढ़ ।

कितनी गरमी थी अभी, कैसी थी वह ताप
धरती पीड़ा भूल गई, पा साजन आषाढ़ ।

लगी गुदगुदी हवा को, बौराई यूँ आज
बजते दोनों हाथ में, ज्यों कंगन आषाढ़ ।

पुलकित हर्षित गगन है, गुमसुम भी है मौन
गड़ा हुआ ज्यों पा गया, ज्यों वह घन आषाढ़।

मरुआये तरु गुल्म ने, कहा उठा कर आंख
आये लेकिन देर से, तुम जीवन आषाढ़ ।

आया तो आषाढ़ है, जलती लेकिन देह
एक पिया बिन दिन लगे, ज्यों ईंधन आषाढ़।

आभा दोहा गजल लिख, बादल पर सौ बार
आया है कल लायेगा, मधु सावन आषाढ़ ।

१५.

घिर के आये मेघ जब, मन मुस्काया गीत
तन में तो बादल घिरे, देह रही क्यों रीत ।

तुम भी आना छोड़ गये, मैं भी हो गई मौन
किससे अपना हाल कहूँ, हारी अपनी जीत।

अपने थे जो दे गये, दिल पर सौ नासूर
ऐसे में क्यों छेड़ते, बादल तुम भी गीत ।

अब भी हूँ हैरान मैं, किसने तोड़ा मौन
मौन गया तो फुट पड़ा, विरह पीर संगीत ।

किससे अपना हाल कहूँ, तुम भी तो बेहाल
सांसे गिन-गिन तोड़ती, दीप स्नेह की प्रीत।

छोड़े जाते हो मुझे, मेरे अपने हाल
सूली पर जो टांग दे, मीत, मीत को मीत ।

आना बादल जान कर, मेरे घर के द्वार
आभा पहली बार है, तनमन से भयभीत ।

१६.

हाथ तुम्हारा थामे चलना अच्छा लगता है
ऐसे में कुछ और फिसलना अच्छा लगता है ।

एक अंधेरा हम दोनों को जग से रखता दूर
अंधेरे में तुमसे मिलना अच्छा लगता है ।

जिन बातों को सुनकर तुम भी जाने क्या सोचो
उन सब को गजलों में कहना अच्छा लगता है ।

तुम बोलो तो बोलो, 'सजनी' बहुत भली लगती
अब तो मैं भी बोलूँ, 'सजना' अच्छा लगता है।

एक बार क्या तन्हाई में मुझसे गले मिले
अब तन्हा-तन्हा ही मिलना अच्छा लगता है।

मत जाने की बात करो तुम दूर-दूर आखों से
साजन ही तो गहना सजना अच्छा लगता है।

१७.

यह गुजर जायेगा रहगुजर धीरे-धीरे
कट ही जायेगा यह भी सफर धीरे-धीरे।

होती जाती हूँ मैं भी बेखबर धीरे-धीरे
प्यार करने लगा है असर धीरे-धीरे ।

यह मुहब्बत है इक गाँव जो मिल गया तो
छूट जायेगा सारा शहर धीरे-धीरे ।

और कब तक करूँ मैं प्रतीक्षा यूँ ही,
अब तो झुकने लगी है कमर धीरे-धीरे ।

जान लेने से मैंने तुम्हें रोका कब,
जान ले लो मेरी तुम मगर धीरे-धीरे ।

जितनी बेचैनी है उनमें उनकी तरफ,
हाय ऐसा है क्यों यह इधर धीरे-धीरे ।

इश्क का काफिया इतना आसान क्या,
तुम भी जानोगे उसका बहर धीरे-धीरे ।

१८.

नई सदी की भोर में, लाशों की बारात
जाने क्या-क्या हाथ लगे, आयेगी जब रात ।

जाग रहा बन्दूक ले, खाली अब देमाग
रो-रो कर अब सो गये, दिल के वे जज्बात ।

कूल-किनारा कुछ नहीं, दिखता लाखो कोस
जिनगी छोटी नाव है, नाविक झंझावात ।

ऐसे युग में आ गये, जहाँ रीति अनरीति
घृणा, प्रेम अब बन गई, प्रेम लगे आघात ।

अब तो दुश्मन भी नहीं, दिखा सकेंगे खौफ
इतने हमने सह लिये, अपनों के उत्पात ।

दिल की होती बात कहाँ, मिला न कुछ अवकाश
मैंने पूछा नाम तो, उसने पूछी जात ।

भायेगी दुनिया कहां, यह तो तय है ठीक
जब तुमको भाया नहीं, आभा का ही साथ ।

१६.

जुल्म का मुझपर तुम्हारा सिलसिला है
पर नहीं कमजोर मेरा दिल किला है ।

जानती हूँ प्रेम धोखा आजकल है
पर मेरा ये दिल क्यों ऐसा बावला है ।

न्याय पर बैठा हुआ कातिल मेरा है
पेश मेरी जिन्दगी का मामला है ।

आग को पानी औ पानी आग कर दें
क्या बतायें क्या हमारा हौसला है ।

कल अकेले थे तो मंजिल सामने थी
आज मंजिल गुम फकत संग काफिला है।

कहने को कहते गजल हैं आज सब ही
पर गजल कहना बहुत भारी कला है ।

२०.

जीवन अपना-सा लगा, जब तुम आये द्वार
गुलदौदी का फूल-सा, कभी लगा कचनार ।

तुमने जो मुझको दिया, वही दे रही दान
घृणा नहीं मैं बांटती, जो तुम देते प्यार ।

जेठ मिलेगा किस तरह, व्याकुल मन यह सोच
अगहन जब आसिन हुआ, बरस रहा अंगार।

क्या निखरेगा देश यह, क्या निखरेंगे लोग
कविता बांचे द्वेष को, प्रीत हुई है भार ।

आकर यह किस समय में, ठहर गये सब लोग
मन तो मारा ही गया, बुद्धि हुई लाचार ।

आभा की दोहा गजल, देशी है यह माल
क्या आंकेगा दाम भी, गजलों के बाजार ।

२१.

कहते हैं विद्वान सब, ज्ञान इन्द्रियाँ पाँच
रोम-रोम इन्द्रियाँ हुई, लगी प्रेम की आँच ।

खा आई सौ चोट मैं, मुझसे हो गई भूल
प्रेम पंत के खंद में, ऐसी भरी कुलाँच ।

जब भी तुम मुझसे मिले, पत्थर फेंके चार
कैसे दीखे रूप अब, दिल तो टूटा काँच ।

सुख पाने की हवस ने, दूर किया ईमान
और इस सुख को छोड़ कर, मन पीड़ा को बाँच।

नई-नई यह सदी है, उतने नये हैं पाप
अमृत पाने तो गया, हाथ लगी है छाँछ ।

आज नहीं कल कहोगे, लगा-लगा कर हाँक
आभा की दोहा गजल, अमृत वाणी साँच ।

२२.

शीतल-शीतल तन हुआ, आया सावन मास
पागल है मन का सुआ, आया सावन मास।

झरती है रसधार अब, भींगी जाती देह
इस मन को किसने छुआ, आया सावन मास ।

आता सावन गर नहीं, नहीं छोड़ती मान
हार गई फिर से जुआ, आया सावन मास।

बूंदों से मुझको छुए, देह-देह कचनार
बादल है या बलमुआ, आया सावन मास ।

बालम का मत दुःख करो, खुद आयेगा लौट
सजनी का यह दुलरुआ, आया सावन मास ।

आभा इतनी जान लो, जो मौसम रसलीन
ये मेरी ही है दुआ, आया सावन मास ।

२३.

कैसे जोड़े प्रीत की, तुमसे अपनी डोर
रातें सब तो बीतती, पल छिन गिनते भोर ।

जबसे तुमसे नेह का, बांधी अपनी प्रीत
मौन हुआ है चमन तक, हम दोनों का शोर।

चाहा कब था भूल कर, अपना रस्ता छोड़
पर अपने इस भाव पर, मेरा रहा न जोर ।

मैंने चाहा था तुम्हें, कभी करूँ ना याद
जब.जब आयी याद तो, भींगे दृग के कोर ।

मन में उठती आग जब, तुम होते हो दूर
तुम ही कहो इस रात में, क्यों आये इंजोर ।

जाने कैसे काटती, आभा अपनी सांस
तन तो ज्वालामुख बना, लावा है हर पोर ।

२४.

चंदन का घर प्रेम है, जिसका ओर न छोर
खुशबू से भींगा हुआ, तन मन पोरम पोर

सूना था मन का सहन, कहीं न कोई गूंज
तुम आये तो भर गया, शहनाई का शोर

जब से उलझी प्रेम में, भूल गई मैं राह
अंधेरा ले आ गई, छोड़ कहीं इंजोर

प्रीत नहीं है जानती, समय-काल का फंद
नल-दमयन्ती जब मिले, रजनी हो गई भोर

विरह-अनल में मन धंसा कैसे उबरे हाय
जग तो जंगल की तरह, पल है आदमखोर

नमामि गंगे

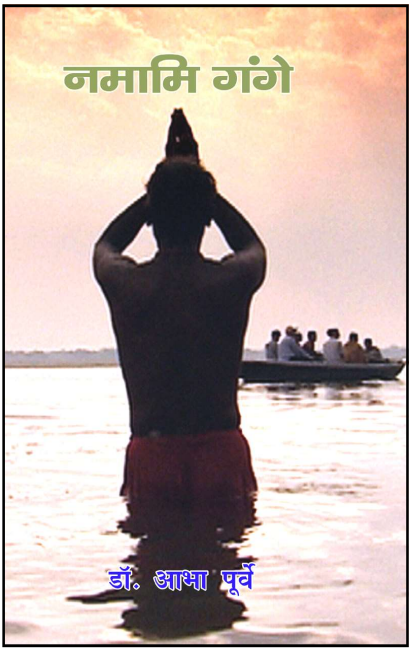
नमामि गंगे
डॉ. आभा पूर्वे

उद्‌भव कथा

हे माँ गंगे
धरती पर उतरने से पहले
कहाँ रहती थी तुम ?
किस लोक में ?

कैसा होगा लोक
कितने लोकों का लोक
तभी तो समा सकी होगी
तुम्हारी इतनी जलराशि ।

नहीं विश्वास होता कि
तुम्हारा निवास
विष्णु के वाम अंगुष्ठ में होता था
और वहीं से निकली थी
हरहराती
बदहवास-सी
जिसे देख कर
भयभीत हो गए थे
तीनों लोक के देवतागण
प्रार्थना में जुट गये उनके हाथ
कहीं पर्वत न टूट पड़े

कहीं धरती न धँस जाय
जुट गये थे देवताओं के हाथ
पितामह ब्रह्मा के आगे ।

देवताओं के भय से भयभीत
समेट लिया था ब्रह्मा ने
गंगा को
अपने कमण्डलु में ।

नहीं यह कैसे हो सकता है
कि तुम्हारी यह जलराशि
किसी कमण्डलु में
समा गई होगी
और यह कैसे हो सकता है
कि तुम्हारा हरहराता वेग
शिव की जटाओं में बँध जाए ।

मन नहीं मानता
लेकिन पुराण कहते हैं
और सारा लोकमानस ही
मानता है
तो मैं ही क्यों कहूँ
कि तुम
धरती पर आने से पहले
भगवान विष्णु के
वाम अंगुष्ठ में निवास नहीं करती थी
ब्रह्मा ने तुम्हें
अपने कमण्डलु में
नहीं रख लिया था
और फिर यह भी क्यों कहूँ कि

तुम्हारा सारा वेग
शिव की जटाओं में
सिमट कर नहीं रह गया था ।

लेकिन मैं
शायद इस पहेली से
बचने के लिए ही
अपने मन को समझा लेती हूँ कि
गोमुख का शिलाखंड ही
विष्णु का वाम अंगुष्ठ है
गोमुख ही
ब्रह्मा का कमण्डलु है
और हिमालय की
ऊँची-ऊँची बिखरी-फैली चोटियाँ
शिव की जटाओं से
कम कहाँ लगती हैं ।

यह अगर सच भी हो
तो हे माता
मन यह मानता ही नहीं कि तुम
विष्णु के वाम अंगुष्ठ में
निवास नहीं करती थी
और वहाँ से सीधे
ब्रह्मा के कमण्डल में
फिर देवाधिदेव
शिव की जटाओं में नहीं उतरी ।

ऐसा ही हुआ होगा, माँ
हे पतित पावनी
मोक्षदायिनी

त्रिभुवन विहारिणी
त्रिपथगा
महानदी गंगे !

सूर्य की किरणों से दीप्त
शैल-शिखरों से
तरल चन्द्रमणि की तरह उतरती
पुण्यवती गंगे
तुम नहीं आती धरती पर
तब क्या होता सगर के
साठ हजार पुत्रों का
जो तुम्हारे जलस्पर्श मात्र से
जी उठे थे ।

साठ हजार पुत्र
और सगर का वह विजय-यज्ञ
देवताओं पर विजय पाने का यज्ञ
इसी से तो
यज्ञ में व्यवधान हेतु
चुरा लिया था इन्द्र ने
यज्ञ का घोड़ा
और बाँध दिया था उसे
पाताल लोक में जा कर
एक तपस्यारत ऋषि के आश्रम के बाहर ।

सगर के पुत्रों ने
खोज शुरु की
तो पहुँच गये पाताल लोक भी
यज्ञ के घोड़े को देखा
ऋषि आश्रम के बाहर में बँधा

सोचा यह सब
इस ऋषि का ही खेल है;
क्या-क्या न कहा
सगर के पुत्रों ने
अपमानित होता हुआ ऋषि का क्रोध
रुक न सका
हाथ में जल लिया
और सगर के साठ हजार पुत्रों को
शापित किया ।

लहक उठे सगर-पुत्र
भष्म का ढेर हो गये सगर-पुत्र
पृथ्वी लोक पर मच गई खलबली
हाहाकार का प्रलय
सगर के भष्मीभूत पुत्र
प्रेत बन कर भटकने लगे ।
आखिर सगर के पुत्र अंशुमाला ने
उनकी मुक्ति के लिए
प्रयास किया
लेकिन सब व्यर्थ सिद्ध हुआ ।

तब दिलीप का संकल्प जागा
वह प्रयास भी सिद्ध हुआ
अभागा ।

बढ़ा जाता था
हाहाकार का प्रलय और भी
आखिर उठ खड़ा हुआ भागीरथ
(दिलीप की दूसरी प्रिया का पुत्र)
उठा कर हाथ अपना

संकल्प में इतना कहा—
मैं अपने पूर्वजों की मुक्ति हेतु
धरा पर लाऊँगा
मुक्तिदायिनी गंगा को ।

भटकती आत्माओं को
पतितपावनी गंगा
मोक्ष देगी
और फिर
उतर आई गंगा
शिव की जटाओं से होती हुई
नीचे भारत भूमि पर ।
माँ गंगे
तुम्हारे जन्म की
कितनी-कितनी कथाएँ प्रचलित हैं,
तुम्हारी जितनी धाराएँ
उतनी ही तुम्हारी जन्म-कथाएँ भी ।

कहने के लिए
यह भी कहा जाता है कि
हजारों-हजार वर्ष पूर्व
जब हिमालय
अपने उथल-पुथल के दौर था
तब वहाँ
एक नदी हुआ करती थी
नाम था उसका 'इन्द्रब्रह्म' ।

चट्टानें उठीं
तो इन्द्रब्रह्म की धारा बँध गयी
नदी झील बन गयी ।

लेकिन नदी को कौन रोक पाया है
नदी का अर्थ ही होता है, प्रवाह
झील बनी इन्द्रब्रह्म नदी ने
फिर किनारों को तोड़ा
और वही
तीन धाराओं में फूट पड़ी
जो धारा पश्चिम में बही
उसको नाम मिला सिन्धु
जो धारा पूर्व की ओर बही
वह कहाई, ब्रह्मपुत्र
और जो धारा
दक्षिण की ओर बही
वही बनी गंगा
गंगा, जो विन्ध पर्वतमाला से
रोके जाने पर
पूर्वगामिनी बन गयी
और अपनी धारा को समेटती हुई
बंगाल की जमीन को
आन्दोलित करती हुई
सागर में
तब से समा रही है
युगों-युगों से बहती आ रही गंगा ।

विपथगा गंगा

माँ गंगे
तुम्हें त्रिपथगा लोग कहते हैं ।
इन्द्रब्रह्म की इन्हीं तीन धाराओं के कारण
या कि किसी और कारण ।
हमारे ऋषि तो यही कहते हैं कि
तुम्हारी एक धार
स्वर्ग की ओर गयी है
दूसरी भूमि को स्वर्ग बनाती है
और तीसरी पाताल लोक में प्रवेश कर
वहाँ के प्राणियों को मोक्ष देती है
अधोगंगा बन कर ।

माँ, तुम्हारी जन्मकथा ही
लोक का कल्याण करनेवाली है
जगत को मोक्ष देनेवाली है ।

हे मां गंगे
तुम तो जगतजननी हो
जगततारिणी भी
फिर ऐसा क्यों होता है कि
तुम्हारी छलछल-कलकल करती लहरें

अचानक ही
प्रलय को आमंत्रण देने लगती हैं ?
और फिर चारों तरफ
विनाश का ताण्डव
शुरु हो जाता है ।

पर्वत रेत बनते नजर आते हैं
वृक्ष जैसे झरते हुए पत्ते
धारा में दहते मकान
जैसे कुएँ में गिरते पत्ते
और उफनती हुई धाराएँ
आसन बना लेती हैं
सेतुओं को,
राजपथों को
पगडंडियों को ।

सब कुछ समाने लगते हैं
तुम्हारे उदर के नीचे
और जब
उतरता है तुम्हारा क्रोध
होता है मन शांत
तब कहीं कुछ नहीं होता
होता है, तो बस
पर्वत के माथे पर
उसकी छाती पर
उसकी बाहुओं पर
पैरों पर
केवल आदमी की लाशें
कंकालों का साम्राज्य ।

माँ, तुम्हारा यह उन्माद
काल को भयभीत करने वाला है
भय को भी भय देने वाला ।

तुम्हारे इस उन्माद से
काँपती रहती है धरती
देवताओं के गिरते हैं घर
और इतना ही नहीं
बह जाते हैं तुममें
देवता भी निरुपाय
अनास्था के उड़ते रहते हैं गिद्ध
यहाँ-वहाँ, सारी जगहों पर ।

एक करुण क्रन्दन
एक भयानक चीख
फिर घनघोर सन्नाटा
और सब के बीच
माँ, तुम्हारा वेग काँपता रहता है
क्रोध से
या करुणा में
कौन कहे ।

जैसे समाधिस्त योगी की सांसें
आग की लपटों में
बदल जाए
जैसे चन्दन की शीतलता में
लपटों की लहर समा जाए
जैसी चाँदनी रात
बैशाख-जेठ की लू बरसाने लगे
जैसे अमृत से

हलाहल की ज्वार उठने लगे
ऐसा ही हो जाता है तुम्हारा रूप
जब तुम उग्र होती हो
उन्मादिनी होती हो ।
हे माँ
काल के कंधे पर सवार हुई
हाँफती-भागती जाती हो ।
एक हरी-भरी दुनिया
मरघट की राख में समा जाती है
हजारों-हजार वर्षों के लिए
छोड़ जाती हो
अपने पीछे
काँपती हुई हवाएँ
रोती हुई दिशाएँ
कलपते हुए पर्वत
बिलखते हुये जंगल
और पछाड़ खाती नदियाँ ।

माँ गंगे
जब तुम होती हो उन्मादिनी विपथगा ।
जब लोक संस्कृति का उच्छेद होता है
नीति की गर्दन दबाई जाती है
प्रकृति की मर्यादा टूटती है ।

आज से हजारों-हजार वर्ष
जब गंगा बहुत शांत थी
कहते हैं
अयोध्या के राजा जितशत्रु के
पुत्र सगर थे जिनके ही पुत्र थे जह्नु कुमार
वही जह्नु

अपने सगे संबंधियों के साथ
कैलाश पर घूमने गये थे
फिर कैलाश की सुरक्षा के लिए
उसके चारों ओर
खाई खोद डाली
और उतार दिया उसमें गंगा को
धरती को फोड़ कर
अपने दण्ड रत्नों से ।
फिर क्या था
गंगा का पानी
धरती के नीचे
नागलोक तक पहुँच गया ।
नागों का दिल दहला
और नागराज का वैसा ही क्रोध
रोका सगरपुत्रों को
लेकिन कब रुकने वाले थे
अभिमानी सगरपुत्र ।

फिर क्या था
नागराज खड़ा हुआ
शाप उन्हें देने को
कि सारे ही सगरपुत्र भष्म हो गये
शापित करने के पूर्व ही
ज्ञात हुईं सारी ही बातें तब
राजा सगर को
दुखित मन से भेजा पौत्र भगीरथ को
आदेश दिया
जैसे हो
गंगा को सागर में ला कर
गंगा की धारा को शांत करो !

भागीरथी ने गंगा को
शांत किया
तब से ही हे माता गंगा
तुम भगीरथ कहाती हो
और तुम जाह्नवी भी हो
क्योंकि धरती पर
जह्नु ने ही तुमको दोबारा उतारा था ।

हे माता गंगे
कितनी कथाएँ हैं तुम्हारी
धरती पर आने की
लेकिन यह सच है कि
तुम्हें जब-जब भी
सगरपुत्रों ने
छेड़ा है, फोड़ा है
तुमने धारण किया है रूप विकट
और बहती रही हो उन्मादिनी बन
धरती डूबी है
तुम्हारे जलप्रलय में
हे माँ गंगे ।

कथा यात्रा

माँ गंगे
क्या तुम महानदी भर हो
या सचमुच में माता हो ?
मुझे तो यही ज्ञात है कि
तुम हिमालय की बड़ी बेटी हो
भीष्म की माता हो
भगवान शिव की अर्द्धांगिनी हो ।

गंगा
सिर्फ नदी नहीं है
माता है
महादेवी है
कहीं दो भुजाओं में
कहीं चार भुजाओं में सुशोभित ।

माँ
भारत को निर्मल
पुनीत बनाए रखने के लिए ही
तुमने नदी का रूप
धारण किया है
हाँ नदी रूप में ही निकलती हो

उत्तरखण्ड के गोमुख से
साढ़े बारह हजार से भी
कहीं अधिक ऊँची
पर्वत भूमि से
और फिर निरन्तर
बहती ही रहती हो
ढाई हजार किलो मीटर
से भी अधिक की
यात्रा तय करती हो
अपने साथ
कई-कई नदियों को
साथ लिए
और तब तक
बहती रहती हो
जब तक कि
तुम्हारी वेगवान धारा
बंगाल के समुद्र के साथ
एक न हो जाती है ।

माँ गंगे
किसे नहीं आश्चर्य होगा
यह जान कर कि
जहाँ से तुम निकलती हो
वहाँ पर तुम्हारी गहराई
बस पन्द्रह इंच से ज्यादा नहीं है
और इतनी पतली कि
दो गज भी
मुश्किल से लगती हो
वह तो तुम्हारी काया
तब कुछ चौड़ी होती है

जब कनखल में
तुम्हारी दो धाराएँ
मंदाकिनी और अलकनंदा
पर्वतों से नीचे उतरती हैं
तभी तुम भगीरथी कहाती हो
तब तुम्हारा रूप
कितना निर्मल होता है
कितना स्वच्छ
फेनिल दूध को
लज्जित करने वाला ।

माँ गंगे
क्या है ऐसा तुम्हारे जल में
कि पाप भी
पुण्य में बदल जाता है
पंडित कहते हैं
तुम्हारे जल में
बैव बैक्टिरियो फेज नामक
विषाणु होता है
जो अन्य खतरनाक विषाणुओं को
निगल जाता है ।

मुझे नहीं ज्ञात
मुझे तो सिर्फ
इतना मालूम है कि
तुम्हारा जल
जल नहीं
धरती पर बही
अमृत की धारा है
जो निरन्तर बहती ही रहती है

हरिद्वार से ले कर
गंगासागर तक
माँ
तुम कोई ऐसी-वैसी नदी नहीं
देवनदी हो
इसी से तो
तुम जिधर-जिधर से गुजरी हो
वहाँ-वहाँ खड़े हो गये हैं
देवताओं के नगर
देवताओं के घर ।

माँ गंगे
तुमने देखे हैं
अपने किनारे-किनारे
बसने वाली अनेक सभ्यताओं को
अनेक साम्राज्यों को
उन्हें बनते ही नहीं देखा है
उन्हें उजड़ते भी देखा है
तुमने धर्म का
उत्कर्ष भी देखा है
धर्म में आते पाखण्ड को भी
और उस पाखण्ड के विरोध में
आक्रोश के उठते हुए स्वर को भी ।

कभी तुम्हारे ही किनारे
स्वामी दयानन्द ने
धर्म के पाखंड के विरोध में
अपना ध्वज लहराया था
तुम्हारी लहरों में
उस विरोध की गूंज

अब भी उसी तरह गूंज रही है ।

माँ गंगे
तुम्हारी निर्मल लहरें
सिर्फ लहरें ही नहीं हैं
ये इतिहास हैं
भारतीय संस्कृति और सभ्यताओं के ।

कोई इन लहरों में
सुन सकता है
हस्तिनापुर की कथा
जो तुम्हारे ही तट पर
कभी बसा था ।

कौरव-पाण्डवों की
कितनी-कितनी कथाएँ
तुम्हारी लहरों से
आज भी सुनी जा सकती हैं
तुममें यमुना का मिलना
दो बिछुड़ी बहनों का
मिलना लगता है ।

कितने-कितने
राजवंशों की कहानियाँ
तुम्हारी धाराओं के साथ ही
बहती रहती है
उनमें मौखरी राजाओं की
कहानियाँ भी है ।
गुप्तवंश की ही नहीं
नंदवंश

मौर्यवंश
और पालवंश के
उत्थान-पतन को भी
तुम्हारे तटों ने
तुम्हारी लहरों ने देखा है ।

हे माता गंगे
जहाँ तुमसे यमुना मिलती है
वह सचमुच में
कितना पवित्र स्थल है
तभी तो वह प्रयाग है
जहाँ भगवान राम ने
कभी भारद्वाज से उपदेश सुने थे
और जहाँ कभी
सम्राट हर्षवर्द्धन
हर पाँच सालों के बाद
अपनी सम्पत्तियों का दान
प्रजाओं के बीच
खुले हाथों से किया करते थे
तब यज्ञों से उठता पवित्र धुआँ
सम्पूर्ण भारत को
सुगन्धित किया करता था
हजारों हाथी-घोड़ों के निनाद
भक्तों का जय जयकार ?
इसकी कथाएँ
सिर्फ इतिहास में ही
नहीं लिखी हुई हैं ।

माँ गंगे
हिमालय से उतरने के बाद

जब तुम काशी पहुँचती हो
और अर्द्धचन्द्रमा का रूप
ग्रहण करती हो
तब तुम्हारे रूप की सुन्दरता का
वर्णन सुकवि से भी संभव नहीं ।

काशी को तुमने
कितना पवित्र बना दिया है
कितने-कितने महान यज्ञों को
यहाँ होते हुए
तुम्हारी लहरों ने देखा है
इसका ही प्रमाण देता
यहाँ दशाश्वमेघ घाट है
तुम्हारी महिमा को
सिर्फ दशाश्व घाट ही नहीं कहता
हरिश्चन्द्र घाट
भाड़वाला घाट ?
जलशायी घाट
मणिकर्णिका घाट
अपने-अपने सीने में
इतिहास के बन्द पन्नों को
समेटे हुए हैं
जिन्हें ज्ञात है, वे पढ़ते हैं
और भारतवासी होने का गौरव
अनुभव करते हैं
जहाँ स्वर्ग की नदी गंगा उतरी है
गंगा, जो कुंभ मेला को पवित्र करती है
गंगा, जिसके बिना कुंभ मेला
बिना आत्मा का शरीर ही ।

यही गंगा
जब मगध में आती है
तो तब इसकी लहरों की चंचलता
और भी बढ़ जाती है
चन्द्रगुप्त मौर्य की
शूरता को याद कर
भिक्खु सम्राट अशोक को याद कर
महात्मा बुद्ध की स्मृति से
तब गंगा की लहरें
साहित्य की वाणी बन जाती हैं ।
मगध की गंगा में
अश्वघोष
महाकवि भास
वाणभट्ट और चाणक्य की वाणियाँ
सोती-जागती हैं ।

यहीं आ कर गंगा
अपनी काया को
फैलाने लगती है
सोन नदी को गले लगा कर
आगे बढ़ जाती है
अंगप्रदेश की निर्मल भूमि की ओर
माँ गंगे
तुम्हें अंगप्रदेश इतना प्रिय क्यों है
यह मुझे ज्ञात है,
मुझे ही क्यों
सम्पूर्ण भारत को ही ज्ञात है
कि अंग महाजनपद
तुम्हारा नैहर भी है
यहाँ तुम्हारा

दूसरा जन्म हुआ था
जब अंग के ऋषि जह्नु ने
अँगुली में रखकर
तुम्हें उदरस्थ कर लिया था
तब भगीरथ के अनुनय पर
उन्होंने तुम्हें अपनी जंघा से
बाहर निकाल दिया था
इस तरह तुम्हारा नाम तब से
जाह्नुवी भी हो गया है ।

हे माता जाह्नवी
अंगप्रदेश में एक बार नहीं
दो बार नहीं
तीन-तीन बार
उत्तरवाहिनी होती हो ।

कौन थी
सम्पूर्ण जम्बू द्वीप में
देवदत्ता-सी सुन्दरी रूपाजीवा ?
उर्वशी-रंभा भी ईर्ष्या करे
देवदत्ता के रूप से ।
वही देवदत्ता
कभी पाटलिपुत्र की
गंगा के किनारे
गंगा की लहरों में
अपनी छवि को निहारा करती थी
घंटों बैठ कर ।

देवदत्ता ही क्यों
कोशा

और उसकी पुत्री-उपकोशा भी
जो अपने अपूर्व रूप
अपूर्व यौवन
अपूर्व धन-सम्पत्ति के लिए
सम्पूर्ण जम्बू द्वीप में
विख्यात थी ।
तुम्हारे तटों पर
जब विहार करती होंगी
तब सम्पूर्ण पाटलिपुत्र ही
पुष्पपुर बन जाता होगा ।
कोशा
जिसके बारे में यह कथा
जगतप्रसिद्ध है कि
जब
सिंह गुहावासी नाम के मुनि
उसके पास पहुँचे थे
यह बताने कि
अप्सराओं
सुन्दरियों के रूप का जादू
विरागियों को नहीं बाँध सकता
लेकिन उस मुनि को
यह कहाँ ज्ञात था
कि कोशा
धरती की उर्वशी है ।
बस कोशा को
देखने भर की देर थी
और
सिंह गुहावासी
कोशा के रूपजाल में बद्ध हो कर
उसके चरण सेवक हो गये ।

माँ गंगे
यह कहानी भी
मैंने तुम्हारी लहरों से ही
सुनी है ।
पायलों-कंगनों की ही नहीं
तलवारों की झनकार भी
तुम्हारी लहरों में गूंजती है ।

हे माँ गंगे
तुम्हारी रेतों में
तुम्हारी लहरों से
तुम्हें छू कर
बहने वाली हवाओं से
तुम्हारे जंगलों से
मैंने एक कहानी सुनी है
कहानी गुरु गोविन्द सिंह की
जो पाटलिपुत्र में
प्रकट हुये थे ।
जैसे तुम
स्वर्ग को छोड़ कर
अचानक ही धरती पर
प्रकट हो गयी थी
धरती के पुत्रों का दुख
हरने के लिए,
ठीक वैसे ही
तुम्हारे फैले आँचल के
एक पवित्र छोर पर
प्रकट हुये थे—गुरु गोविन्द सिंह ।
हिन्दु धर्म के रक्षार्थ
जिन्होंने अपने चार-चार पुत्र

खो दिए
लेकिन अपने संकल्प से
पीछे नहीं हटे
देश के पूरब पश्चिम
दक्षिण-उत्तर तक गये
धर्म की रक्षा के लिए
महाजनपद मगध से लेकर
महाजनपद अंग तक ।

हे माता गंगा
तुम्हारी लहरें
गुरु गोविन्द सिंह की यशोगाथा
तेज-तेज स्वर में
गाती हुई बहती रहती हैं
अंगप्रदेश के मणिहारी घाट तक ।

हे पतितपावनी
तुम्हारी महिमा की गाथा
मगध से लेकर अंग तक
उतनी ही विराट है
जितनी कि अंगप्रदेश में
तुम्हारे घाटो का विस्तार ।

तुम कई-कई
नदियों को समेटते हुए
मोकामा तक क्या पहुँचती हो
तुममें अंगप्रदेश की महिमा
दूध-पानी की तरह
एक होने लगती है ।
मोकामा यानी मगध-अंग का

मिलन-स्थल
यानी मगध अंग की सीमा-रेखा
मोकामा के सामने
गंगा के बायें भाग में
अंगप्रदेश का सिमरिया घाट
जहाँ कातिक के महीना में
महान धार्मिक मेला लगता है
सिमरिया का यह कार्तिक मेला
अंगप्रदेश का
कुंभ मेला ही तो है
इसी सिमरिया ग्राम में
ओज के कवि दिनकर का
जन्म हुआ था
जिन्होंने तुम्हारी धारा की तरह
अपनी कविताओं को
ओज और लय से बद्ध किया था
लगता है, कि
हे गंगे
तुम्हीं दिनकर की कविताओं में
समा गई हो ।

मगध और अंग की
भूमि को हरियाली से
भरनेवाली, हे माँ गंगे
तुम मोकामा से आगे क्या बढ़ती हो
तुममें कई-कई नदियों को
अपने में समेटे
क्यूल नदी भी आखिर
तुममें समा जाती है ।

कभी ऐसा भी समय था
जब कई-कई नदियों का पानी
मोकामा की झील में
इकट्ठा होता था
और वहीं से एक बड़ी नदी बनकर
गंगा में समा जाता है
जो मगध-अंग की सीमा को
अलग करता था ।
जहाँ मगधराज बिम्बसार
के समय में
मगध अंग की सेनाओं का
भीषण युद्ध हुआ था,
और पराजय के कारण
अंग राज्य के अन्तिम
शासक ने
महानदी में कूदकर
प्राणों की आहुति दे दी थी ।
यह कथा भी
तुम्हारी लहरों पर
अभी तक दर्ज है ।

हे माँ गंगे
तुम्हें सब कुछ स्मरण होगा
तुम यह भी नहीं
भूल पाई होगी
कि पालवंश का अन्तिम राजा
इन्द्रद्युमन की पटरानी
अपनी पुष्करिणी के बीच
स्वर्ण कमल पर स्नान करती थी
और एक दिन ऐसा हुआ कि

स्नान के समय भी
स्थिर रहने वाले
स्वर्ण कमल की
पंखुड़ियाँ हिल पड़ीं
अशुभ होने की शंका हुई
और सचमुच में शंका साथ हुई
इन्द्रद्युम्न पटरानी सहित
अपने राज्य को छोड़ आगे
यह कथा भी
क्यूल नदी की जलधारा के साथ ही
तुम्हारी लहरों में
मिलती रहती है
जब क्यूल नदी भी
चलते-चलते
थकी-हारी
सूर्यगढ़ा में आकर
तुममें समा जाती है ।

गंगा
यह नाम लेते ही
सारी देह
श्वेत शिला खण्ड-सी
चमक उठती है
और रोम-रोम
तुलसी मंजरी की तरह
महक उठते हैं
एक अजीब पतिव्रता लिए ।

मन
आरती पर रखे

अकम्पित
दीये की तरह
रोशनी देने लगता है,
कामनाओं का अन्धेरा
न जाने कहाँ
कब छोड़ देता है शरीर
और शेष रहता है
कपूर की गेध से सना
कोई अलौकिक प्रकाश ।

गंगा
धरती पर सुधा है
मानव की मुक्ति है
स्वर्ग की दीप्ति है
भारत का रूप है
जाड़े की धूप है
भारतवासियों की
माता है ।

गंगा का अर्थ
किसी व्याकरण में नहीं
किसी शब्दकोष में नहीं
वह जो वहाँ अर्थ है
वह किसी नदी का है
गंगा का नहीं ।

गंगा तो
समाधि में
जागनेवाली शक्ति है
ऋषि की

दिव्य भक्ति है
यह मैं नहीं
अंगप्रदेश का रोम-रोम कहता है ।

धन्य है यह अंगभूमि
जहाँ गंगा
एक बार नहीं
दो बार नहीं
तीन-तीन बार
उत्तरवाहिनी होकर बहती है ।

हे माँ गंगे
पहले तो तुम
सूर्यगढ़ा में प्रवेश करते ही
उत्तरवाहिनी होती हो
और मुंगेर तक
उत्तरवाहिनी ही बनी रहती हो
फिर सुल्तानगंज में आकर
थोड़ी दूर के लिए
और फिर
कहलगाँव से कोशी संगम तक
उत्तरवाहिनी ही बनी रहती हो ।

धन्य है
यह अंगभूमि,
कितना सौभाग्य
बाँट रही हो तुम यहाँ
यह बात मैं ही नहीं
सारे अंगवासी ही नहीं
तुम में अपनी धारा समाकर

डकरा नाला भी कह रहा है ।

हे पतितपावनी
आखिर तुम
मुद्गल ऋषि के धाम तक
आते-आते
इतनी प्रसन्न क्यों हो उठती हो
कौन-सी स्मृति
तुम्हें इतनी गुदगुदाने लगती है ?
इसलिए
कि यहाँ मुंगेर के
तुम बीचो-बीच बहती हो
या कि
तुम्हें याद आ जाती है
जब मुंगेर
चम्पक तीर्थ कहा जाता था
या कि यह याद कर
प्राचीन काल में
तुम्हारे उस पार से
एक सघन वन शुरु होता था
जो नेपाल की सीमा तक जाता था
और जहाँ तक
यह जंगल जाता था
वहाँ तक
अंग महाजनपद की सीमा थी
जिसे प्राचीनकाल में
चमकारण्य भी कहते थे लोग ।

हे मोक्षदायिनी
तुम कष्टहरिणी तक पहुँच कर

आखिर क्या
देर-देर तक सोचा करती हो ?
क्या वनवास के क्रम में
आगे राम, सीता, लक्ष्मण को
याद करती हो
या पालवंश के वैभव को
याद करती हो,
जिसकी स्मृति दिलाता है
तुम्हारे किनारे बना
मुंगेर का अद्‌भुत गुप्तगढ़
जिसकी दीवारों में
कोठरियों में
जाने कितने युगों की कहानियाँ
हँसती-खेलती,
और रुदन करती मिलती है ।
तुम्हारे किनारे खड़ा
यह गुप्तगढ़
अपने अतीत को
तुमसे कहता है ।

माँ
मैंने तुम्हारे
कष्टहरणी घाट पर ही बैठ कर
सुनी है,
उस तांत्रिक की कहानी
जो अपने को
खौलते घी की कढ़ाई में
डाल देता था
और इस तरह
भगवती को खुश करके

सवा मन सोना
प्राप्त करता था ।

आखिर
क्या करता था सोना
किस दुखिया के बीच
बाँट आता था, सोना ।
कोई नहीं जानता
लेकिन इतना तो
सभी जानते हैं कि
तुम्हारे किनारे खड़ा
इसी गुप्तगढ़ पर
कभी नरेश धर्मपाल के पुत्र
देवपाल का ध्वज
लहराता था ।
जिसने अपने विजयोत्सव पर
तुम्हारे एक छोर से
दूसरे छोर तक
नौंकाओं का सेतु बनवा दिया था
तब तुम्हारी लहरें
नौकाओं पर लहराती
रौशनियों से
सोने की उठती तरंगें
बन गयीं थीं ।

माँ गंगे
तुमने पालवंशों के
गौरव को ही नहीं देखा है
देखा है तुमने
शेरशाह के बढ़ते पराक्रम को,

मीरकासिम की कहानियों को
तुमसे अधिक
और कौन जानता है ?
तुम्हारे किनारे बना हुआ
मुंगेर का यह गढ़
कितने-कितने इतिहास को
तुमसे कहता रहता है,
कहता है, मुगलशासकों की कहानियाँ
नारों-हुकारों की दास्तानें ।

और इन कहानियों को
समेटती हुई
गुनगुनाती हुई
चली आती है
अंगप्रदेश के गंगाधाम में
जहाँ तुम
एक बार फिर
उत्तरवाहिनी बन जाती हो
तुम्हारी इसी गति के कारण
गंगाधाम
कलशतीर्थ के नाम से
याद किया जाता है ।

माँ गंगे
तुम यहाँ आकर
कितनी प्रसन्न
कितनी शांत
कितनी गंभीर
कितनी भव्य
कितनी विराट

दिखती हो
शायद इसलिए कि
यह गंगाधाम
शिव की तपोभूमि रहा है
यहाँ पर महर्षि अगस्त्य को
उनकी तपस्या से
खुश होकर
उन्हें दर्शन दिया था
और यहीं
सोम ने
शिव की घोर तपस्या कर
शिव को
प्रसन्न कर लिया था
और उसी प्रसन्नता में
शिव ने
सोम को
अपने माथे पर
रख लिया था
और यह गंगाधाम
तभी से
काशी की तरह
पवित्र हो रहा है ।

माँ गंगे
कभी-कभी मैं सोचती हूँ
कि आखिर
इसका नाम गंगाधाम क्यों पड़ा ?
शायद इसलिए कि
तुम्हारा पुनर्जन्म
उसी भूमि पर हुआ था

गिरि पर तपस्यारत
जह्नु ऋषि का आश्रम
जब तुम्हारी धार में
बहने लगा था
तब ऋषि ने
तुम्हें चुल्लू में लेकर
पान कर लिया था ।
यह देख
विह्वल भगीरथ ने
बहुत अनुनय किया था
तब तुम्हें जह्नु ऋषि ने
मुक्त किया था
तभी तो तुम
जाह्नवी कहलाई
यानी जह्नु ऋषि की पुत्री ।

माँ गंगे
यह गंगाधाम
तुम्हारा मायका है
तुम्हारे पुनर्जन्म की भूमि
तभी तो यह गंगाधाम है ।

क्या कारण है कि
जब तुम
यहाँ से निकलती हो
तुम्हारे चेहरे पर
कभी कोई
उदासी नहीं दिखती
तुम किसी
विराट महाकाव्य की तरह

महाभारत की तरह
रामचरित मानस की तरह
निरन्तर
प्रवाहित होती रहती हो
चम्पा से लेकर
गंगा सागर तक ।

सिमरिया से लेकर
राजमहल का विशाल क्षेत्र
तुम्हारा नैहर ही तो है ।
हे गंगा माता
जहाँ तुम्हारी हँसी
तुम्हारा उल्लास
देखता ही बनता है ।

माँ गंगे
तुमने अंगदेश को
अंग महाजनपद को
अंगप्रदेश को
इतना कुछ दिया है कि
सारा आकाश को
सारी धरती को
अगर कागज बना दिया
और सातो समुद्र को स्याही
तब भी
अंगप्रदेश में
तुम्हारी महिमा को
नहीं लिखा जा सकता है ।

हे माता गंगे

तुमने ही तो
अंगवासियों को
वह विशाल जल मार्ग दिया था
जिस पर चलकर
अंगवासी
सुदूर देशों में गये
और बसाया
वहाँ एक नया अंगराज
'अंगकोर'
वहाँ-वहाँ बस गई चंपा
ताकि
चम्पा की कहानियों को
दूर-दूर देशों में
फैलाया जा सके ।

अंगप्रदेश की चंपा में
तुम्हारी
उतनी ही कहानियाँ
लहराती हैं,
जितनी कहानियाँ
अंगप्रदेश की
तुम्हारी लहरों पर बिछी हैं ।

कभी गंगाधाम में ही
तुम्हारे घाटों को पार कर
भगवान बुद्ध
अंगुत्तराप पहुँचे थे ।
बार-बार आये थे
भगवान बुद्ध
चम्पा में

जिस चम्पा में
गंगाधाम के बाद
तुम भी उतरती हो, माँ
अपनी सम्पूर्ण आभा को
बिखेरती हुई ।
कहती हो कथा—
सोमदण्ड की
चम्पा के अद्वितीय वेदाभ्यासी
जो अपने शिष्यों के साथ
बुद्ध की वाणी से
अभिभूत हो कर
बौद्ध हो गये थे ।
कहती हो कथा
वासुपूज्य की
उनके जन्म से लेकर
निर्वाण तक की कथा
कहती हो कथा—
सम्राट अशोक की माँ
सुभद्रांगी की
जो चम्पा की ही बेटी थी
कहती हो कथा—
विशाखा की
जो भगवान बुद्ध की
प्रथम शिष्या थी ।

हे गंगे
चम्पा में ही आकर
तुम विस्तार से कहती हो
चन्दनवाला की कथा
जो भगवान महावीर की

प्रथम शिष्या थी
और फिर कहती हो
महासती बिहुला की कथा
जिसमें अपने पति को ही नहीं
जीवन दिया था
बल्कि यह सिद्ध भी किया था
कि स्त्री चाहे तो
सारे संकटों का
मुकाबला कर
अपने अस्तित्व की
रक्षा कर सकती है ।

तुम्हारी एक-एक लहर
कहती है कथा
महासती बिहुला की
विषहरी की जिद की
चाँदो सौदागर की भक्ति की
उसकी समृद्धि की ।

माँ गंगे
तुम्हारे ही पुण्य को पाकर
कभी यह चम्पा
बड़े-बड़े जहाजों की
शरणस्थली बनी हुई थी
उन जहाजों से
उतरते थे
सोने, मोती, माणिक ।
चमकती थी चम्पा
सूर्य की आभा की तरह
एक-एक व्यापारी के

द्वार पर
खड़ी रहती थी सैकड़ों बैलगाड़ियाँ
सोने के मुहरों से भरी हुईं ।

धन ही नहीं बरसता था
संस्कृति भी बरसती थी
संगीत भी बरसता था
चम्पा की वासवदत्ता की कहानी
राग-रागनियों की तरह
अंगप्रदेश के घर-घर में
अभी भी घूमती फिरती है ।

दुनिया
सभी बातें जाने न जाने
राजा रोमपाद की कहानी
तो जानती ही है
जिसके दामाद थे—महर्षि ऋषि शृंग
अवध के दशरथ के लिए
किया था यज्ञ
ओर दशरथ के आँगन में
गूंजी थी किलकारियाँ
राम की
लक्ष्मण की
शत्रुघ्न की
भरत की ।

ऋषिशृंग
तुम्हारी ही लहरों पर
चढ़ कर आये थे
चम्पा में

जिनके पिता विभांडक
अंप्रदेश के ही ऋषि थे
और तुम्हारे ही तट पर
जिनका आश्रम था ।
चम्पा में आकर
कितनी-कितनी कहानियाँ कहती हो
हे माता गंगे ।
और आखिर में सुनाती हो
महादानी
परमवीर
कर्ण की कथा
महाभारत के सूर्यपुत्र की कहानी
जो इसी चम्पा की गंगा में
घंटों
सूर्य की उपासना में ध्यानस्थ रहता
सवा मन सोना दान भी करता
तुम्हारे तट पर खड़ा होकर,
आज भी
तुम्हारे किनारे पर खड़ा
कर्णगढ़
एक-एक कहानी को कहता है ।

अतीत औघड़ की तरह
जागता रहता है
चम्पा की गंगा के किनारे ।

हे गंगे
तुम्हारी चम्पा में
शैर्य और दान की कथा ही
नहीं दौड़ती है

यहाँ, तुम्हारे तटों पर
वैराग्य की भी
कितनी-कितनी कहानियाँ
बिखरी पड़ीं है
हीरे के पत्थरों की तरह ।
तुम्हारे किनारे
बिखरी हैं
उसी तरह प्रेम की भी गाथाएँ ।
तुम्हारे निकट आते ही
अभया की कहानी
जागने लगती है
जो रानी तो थी
किसी नरेश दधिवाहन की
लेकिन जिसे
प्रेम हो गया था
चम्पा के ही
एक महासेठ सुदर्शन से ।
राजा को खबर मिली
आदेश हुआ
सुदर्शन के सर को
उसके धड़ से
अलग कर दिया जाय
और जब जल्लाद
ऐसा करने पहुँचा
तो उसकी तलवार
फूलों की माला में बदल गई
सुदर्शन का प्रेम बच गया ।

चम्पा की गंगा
मैंने तुमसे ही सुनी है

बारी-बारी से
बिहुला,
विशाला,
चन्दनवाला,
सुभद्रांगी,
अभया,
और रानी घग्घरा की कहानियाँ ।

यह तो सभी जानते हैं
कि तुम्हारे किनारे बसने वाले
सेठ द्वारपाल के पास
अठारह करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ
और दस करोड़ गौएँ थी ।
शायद किसी को
विश्वास नहीं होगा
हो भी कैसे सकता है
लेकिन ऐसी ही थी
तुम्हारी चम्पा
तुमने अपना
सारा प्यार दे रखा था इसे
तभी तो
अपार धन-सम्पत्ति के साथ
तुम्हारे किनारे पर
ज्ञान की महा सरस्वती बहती थी ।

कहलगाँव
विक्रमशिला बौद्ध महाविहार
का भग्नावशेष
आज भी
अतीत के ज्ञान की परम्परा को

खुले कंठ से कह रहा हैं
कि तुम्हारे किनारे-किनारे ही
दीपंकर श्री ज्ञान,
सरहपाद,
शबरपा,
चम्पपा
चेलूकपा
की वाणियाँ गूंजी थी
जेसे कि
कुप्पाघाट के किनारे-किनारे
महर्षि मेंही की वाणियाँ
तुम्हारे रेतों और लहरों पर
सातों सुर में बजती रहती हैं ।

हे गंगे
सचमुच में
अति पवित्र है यह अंगप्रदेश
जहाँ पवित्र मोक्षदायिनी
महानदी गंगा में
महानदी कोशी
मिलती है
और सागर की तरह
फैल जाती हो तुम
कहलगाँव में
फिर फैलती ही जाती हो
अंगप्रदेश के
आखरी छोर तक
राजमहल की कहानियाँ सुनाने
जो भारतेन्दु के
बचपन भूमि है

बिहार बंगाल की किस्मत की कहानी है
बादशाहों का भाग्य दुर्भाग्य है ।

लेकिन इन बातों से अधिक
तुम बार-बार
इस कहानी को भी
दुहराती हो
कि किस तरह
तुम्हारे किनारे
शची ने घोर तपस्या की थी
और आखिर में
वर रूप में प्राप्त किया था
देवताओं के नरेश इन्द्र को ।

मिलन कथा

हे माँ गंगे
अंगप्रदेश से निकलते ही
तुम्हारी धारा
दो भागों में विभाजित
हो जाती है
जैसे तुमने
अपनी दो बाहुओं को
सामने फैला दी हो ।
किससे गले मिलने के लिए
किससे गले लिपट कर
अपनी सारी खुशी
अपनी सारी व्यथा
समर्पित कर देने के लिए ।

हाँ पश्चिम बंगाल का मुर्शीदाबाद
मुर्शिदाबाद का
नदिया ग्राम
यही तो वह जगह है
जहाँ से तुम बँट जाती हो, माँ
दो भागों में
और जगत में

प्रसिद्ध हो जाती
किसी के लिए, पद्मा
किसी के लिए, भागीरथी
लेकिन क्या अन्तर पड़ता है
कोई किसी नाम सें तुम्हें पुकारे
तुम हो तो सबके लिए
पतितपावनी गंगा
मोक्षदायिनी गंगा
पापविनासिनी गंगा
जगततारिणी गंगा
चाहे तुम्हारी धार
बंगलादेश की भूमि को
पवित्र करे
या फिर बंगाल की चैतन्य भूमि को ।

क्या फर्क पड़ता है
कि हुगली तक आते-आते
तुम हुगली नदी ही
बन जाती हो
लेकिन तुम्हारी धाराओं में
लहरों में
जिस भगीरथ की कथा
लिखी हुई है,
वह शेष कहाँ होती है,
तुम आखिर तक
भागीरथी ही बनी रहती हो ।
यह कहानी
आज की नहीं है,
आज से तीन-चार करोड़ वर्ष
पहले की कथा है

जब हिमालय ने
अपना आकार लिया था
और तुम उतर पड़ी थी
उस हिमालय से ही
भारत की पुण्यभूमि पर
और तब से ही
बही जा रही हो
निरन्तर
अविरल गति से ।

हे माँ भागीरथी
हावड़ा होते हुए
जब तुम
सुन्दरवन में
विश्राम करने पहुँचती हो
तब महासागर
कितने स्नेह से
तुम्हारी ओर देखता रहता है ।

सुन्दरवन तक आते-आते
कितनी-कितनी वनस्पतियाँ
हर्ष से
पुलकित होती रहती हैं ।
तुम्हारी विजय की कथा
उसी सुन्दरवन में
गरज-गरज कर कहते हैं
शक्ति के सूर्य, अनगिनत शेर ।
कभी ये ही शेर
राजमहल के जंगलों में
गरजते थे

जब सागर
बंगाल के सुन्दरवन के निकट नहीं
राजमहल के पास होता था
और अंगदेश का मन्दार
सागर के बीच
शिवलिंग की तरह
शोभता था कल्प बीते ।

सदियाँ बीतीं
समय बीता
माँ गंगे,
तुम्हारे साथ आई
पर्वत के कण
नदियों की मिट्टियाँ
जमती गयीं
और समुद्र एक दिन
सुन्दरवन तक पहुँच गया
जहाँ अब भी
मिट्टियाँ जम रही हैं
और सागर
दूर होता जा रहा है
डेल्टा की उठती भूमि के
कारण ही
तुम्हारी धार
यहाँ कितनी धीमी हो जाती है
क्या
यहाँ तक आते-आते
सचमुच ही
थक जाती हो तुम ?
लेकिन सागर से

मिलने की तुम्हारी चाह को
कहाँ रोक पाती है
डेल्टा की उठती हुई भूमि ।
तुम अपने को
दो धाराओं में नहीं
कई-कई धाराओं में
बदल लेती हो ।
यहाँ
तुम्हें
इतनी-इतनी धाराओं में
विभाजित देखकर
मुझे यही लगता है
कि वे तमाम नदियाँ
महानदियाँ
यमुना,
रामगंगा,
करजली,
सोन,
गंडक,
कोशी,
बाँसलोई,
मयूराक्षी,
चानन,
जो तुममें मिल कर
एक हो गयी थीं
यहाँ तक आते-आते
तुमसे अलग हो रही हों
शायद यह बताने के लिए कि
गंगा की शक्ति पा कर ही
मैं सागर के

किनारे तक पहुँच पाई हूँ
नहीं, तो न जाने
कहाँ
किस पर्वत में
किस रेगिस्तान ने
किस जंगल ने
हमें सोख लिया होता ।

हे गंगे
इतनी-इतनी धाराओं के साथ
तुम यहाँ
ऐसी ही लगती हो
जैसे देवी दुर्गा के
कई-कई हाथ
एक साथ
हवाओं में तैर रहे हों ।

हे माँ गंगे
तुम भगवती ही तो हो
तुम सिर्फ
धरती पर
स्वर्ग की महानदी ही
नहीं हो ।
तुम जीवनदायिनी हो
तुम्हारे ही कारण
नगरों-महानगरों के
सीने पर,
कंधों पर,
बाँहों पर,
हथेलियों पर,

सजते हैं तीर्थ प्रदेश
महापर्व के उत्सव ।

लेकिन
क्या कारण है कि
तुम्हारे चेहरे पर
पावस का इन्द्रधनुष नहीं
वर्षा की
भयभीत करने वाली
बिजलियाँ कड़कती हैं ।
कहीं इसलिए तो नहीं
कि तुम्हारी
कंचन काया पर
दूषित जल का तेजाब
छिड़क रहा है ।
वह भी
एक-दो मन नहीं
लगभग तीन करोड़ लीटर प्रदूषित जल
वह भी प्रतिदिन ।

लोगों को नहीं मालूम
कि इस अपराध का
जो दण्ड होगा
उससे तो किसी तरह भी
नहीं बचा जा सकता ।
एक भी मीन नहीं बचेगा
किसी नवीन सृष्टि के लिए
एक-एक कर मर रही हैं
मीन की सारी प्रजातियाँ
घड़ियाल मर रहे

डॉलफिनों के प्राण व्याकुल हैं ।
लेकिन यह आदमी है
कि चेतना ही नहीं ।
हिमालय पर
बारूद की ज्वालामुखी
फूट रही है
बर्फ का पहाड़ पिघल रहा है
कल यह भी हो सकता है
कि हिमनदी ही सूख जाय
तब तुम कहाँ होगी धरती पर
हे माँ गंगे,
कहीं ऐसा न हो कि
तुम रूठकर
फिर लौट जाओ स्वर्ग ही
और धरती के पुत्र
शोक संतप्त सगर की तरह
विलाप करते दिखे ।

नहीं, हम जीवित हुए सगर पुत्रों को
अब मरने नहीं देंगे ।
जुलाई २०१४ के संकल्प को
कोई रावण हरे
तो हरने नहीं देंगे
तुम भगीरथ की ही नहीं
भारतवर्ष के
सवा करोड़ लोगों की माँ हो ।

शिशिर की धूप

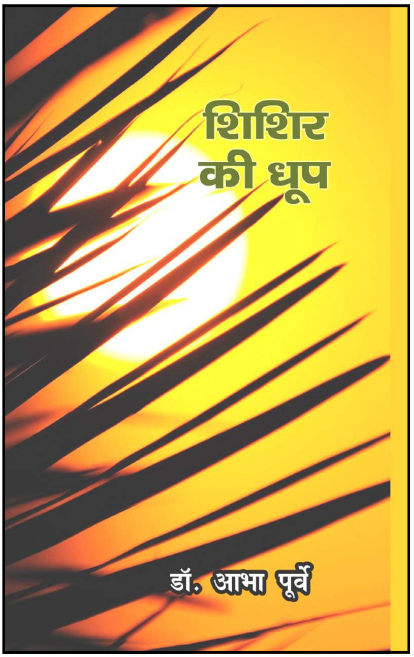
शिशिर
की धूप
डॉ. आभा पूर्वे

गीत (१)

मुझसे पूछ रहे हैं
जाने कब से चाँद-सितारे
तुमको कौन पुकारे ?

सुन-सुन कर
मन को क्या होता
पागल बन हँसता
फिर रोता
धारा पर जो रुकी हुई-सी
लग जाती है नाव किनारे ।

इस निशीथ में
बिखरी अलकें
काजल बिन श्रीहीन कोर
चंचल-सी पलकें
लगता है जन्मों-जन्मों का प्यार लिए
वह मुझे सँवारे ।

ब्याहे अधरें
ब्याही आँखें
खुली हुई हैं अंग-अंग की
ब्याही पाँखें
ऐसे ही कुछ
तन-मन अब तक रहे कुँवारे ।

गीत (२)

कब जाने मन पिघल चले
कैसी है यह आग
हृदय में
सृजन छिपाए क्या है
क्षय में ?
क्या भविष्य की चिंता में
यह वर्त्तमान भी निकल चले !

ऐसा कुछ भी
करना मत मन
सूखा मेघ हो
गीला आँगन
देख देख कर प्राणों का सुर
हँसे नहीं और दहल चले ।

शंकाओं की घटा
हटे यह
कुहरे का जो जाल
कटे यह
शून्य-शून्य यह, भरा-भरा हो
अब इसकी भी पहल चले ।

गीत (३)

इस खाली-खाली जीवन में
सौ-सौ सपने जागे मन में
एक तुम्हारे आ जाने से ।

पंछी उड़े हिला कर पाँखें
लगी फड़कने सबकी आँखें
अनजाने सब पहचाने से ।

अब तो तन-मन पुष्पगन्ध बस
अलि पर जैसे एक छंद बस
मन उब-डुब बस घन छाने से ।

गीत (४)

साथ भी दोगे कभी क्या
साथ मेरा माँगते हो ।

डालियाँ हैं
फूल भी हैं
फूल है तो
सुरभि चंचल
हो रहा मन आज पागल
क्यों नहीं तुम जागते हो,
साथ मेरा माँगते हो ।

शून्य में तुम
खोजते क्या
पाँव उस पर
क्या टिकेंगे
प्राण उस पर क्या लिखेंगे
प्रश्न है । क्यों भागते हो ?
साथ मेरा माँगते हो ।

गीत (५)

आज मन में बैठ चुपचुप कौन बोले !
बहुत रोया तू हृदय
अब शांत हो तुम !

इस तरह आँसू बहाने से
मिला है क्या किसी को ?
मत जलाओ और जी को !
रात भर जगती रही है पीर,
अब तो सो ले !

आस किसकी ?
राह किसकी ?
जो बिछे हैं नैन
मूक क्यों है बैन ?
अब कहाँ है साथ मन को जो उड़ाए
आज मन किसको टटोले !

एक तरफ जीवन लहरता
एक तरफ आँसू बिछे हैं,
देवता के ये रचे हैं ।
या तो हँस लो खूब जी भर,
या तो जी भर खूब रो ले ।

गीत (६)

आज बरसा मेघ
लेकिन ग्रीष्म तन है ।

खिल सके न फूल
क्या सौरभ पुलकते
नींद ने देखा है
आँसू को ढुलकते
दूर कितना प्राणधन है ।

ले पवन की ओट
मुझसे कौन बोले
जाग उठते
पीर के सारे फफोले,
और फिर तो वेदना का
छुम छनन है ।

क्या नहीं इस लोक में
मन के लिए कोई निलय है
विष भरा, माहुर भरा
मिलता अमय है
रात यह घन से भरा मेरा गगन है ।

गीत (७)

आँखों में स्वप्न
आग हाथों पर रख आए
कैसे मन सुख पाए ।

गड़ती है साँझ
डायन रजनी बन आती
पीती है प्राणों का रक्त मेरा
सँझवाती
तुम ही नहीं हो जब
पीर कौन सहलाए ।

मैंने लगाया था
एक बाग फूलों का
उत्सव मनाएंगे जिसमें ही
झूलों का
जो वसंत आया तो
शूल वहाँ उग आए ।

प्रश्न लिए बैठा मन
अनचीन्हे, अनजाने
खुद को न जाने जो
बैठा है समझाने
सारे सवालों को छोड़ कहाँ–आऊँ मैं
कौन मुझे समझाए ।

गीत (८)

आँसू, पीर, अभावों का
यह वर्त्तमान भी क्या है !

माँगो सुख तो
दुख आ ढलके,
मेरी खुशी
वहीं आ लपके,
सबके हिस्से में वसंत है
मेरे हिस्से में है पावस,
जग जिससे परहेज करेगा
मेरे लिए बने हैं पावन ।
कोई न कुछ भी समझेगा
मन का यह विज्ञान भी क्या है ।

कौन यहाँ है
मेरा अपना,
जो कुछ है
बस टूटा सपना;
आहें ही संगी-साथी हैं,
ताप सभी मनभावन ।
सब छूटे, पर ये न छूटे
जीवन कर लूँ
नया रूप ही इनसे
कोई क्या समझेगा इसको
यह अभियान भी क्या है ।

गीत (९)

मैंने समझा था
तुम्हारा प्यार कंचन
और गुलमोहर
खिला कचनार कोमल,
आज जाना टूट कर यह
एक भ्रम, छल, छद्म केवल ।

मृगतृष्णा है तुम्हारा प्यार
जो हृदय को दग्ध करता
मेघ ऐसा
जो कभी छूता नहीं है भूमि को,
नभ पर विचरता ।
सोच कर यह आँख छलछल ।

आज जीवन लग रहा है
ठूँठ की हो प्यास
प्राण की क्या साधना जब
आग पर आवास,
मन-हृदय को कर रहा है श्याम
आँखों का ही काजल ।

गीत (१०)

क्यों न मलयानिल भी लौटे
लौटता मधुमास जब हो !

झड़ गए
कैसे अचानक
फूल, पत्ते, गंध, रस सब
हो कथा बिन ज्यों कथानक,
क्या कोई कविता सजेगी
छंद का उपहास हो ?

तप रहा है सूर्य
सर पर आग बन कर
दिन उठा है काल का ही राग बन कर
किस तरह से दूर बादल
जब तड़पती प्यास हो ?

गीत (११)

मैं तुम्हारी हूँ, रहूँगी
कोई क्या बोले, कहूँगी ।

नित्य हो, आनन्द भी हो
शाह भी मेरे लिए हो,
जब भी देखा है तुम्हें तो
तुम लगे बिल्कुल नये हो,
मधु, पवन, सागर तुम्हीं हो
सुरभि बन कर मैं बहूँगी ।

दृष्टि हो, मेरे श्रवण हो
नर्म बाँहों का हिंडोला
मेरे मन के भाव हित तुम
छंद दोहा और रोला,
जो प्रणय है आग केवल
तो भी मैं इसमें दहूँगी ।

गीत (१२)

कह गए पतझर-कथा तुम
पर नहीं मधुमास की
जाने व्यथा तुम ।

बौर की मधुगंध मादक
छा रही थी गगन छत पर
खुल गया था मन का निर्झर,
पर निभाये ही चले
उद्धव-प्रथा तुम ।

क्या भला मधुमास आये,
क्यों झुके रसपूर्ण-महुआ
चुप हुए क्यों, क्या हुआ ?
कोई ऐसा भी क्या निर्दय ?
हो यथा तुम ।

गीत (१३)

यूँ ही और निकलना होगा,
बहुत दूर तक चलना होगा ।

कुआँ, बाबड़ी, ताल, तलैया
सब बादल की बाट निहारे,
मेरी प्यास नहीं तुम पूछो
आँसू के ही साथ सहारे
बँधा हुआ पर्वत से जल है
जाने कैसे मिलना होगा ।

उस पर राह बहुत लंबी है
रेत आग की बिछी हुई है
इसी रेत पर मुझे निकलना
लक्ष्मण-रेखा खिंची हुई है
नव जीवन की चाह जगी है
इसी जन्म में जलना होगा ।

गीत (१४)

फिर मिलें या न मिलें
तुम आज मिल लो,
दो कदम ही साथ चल लो !

कुछ कहाँ है थिर यहाँ
आया नहीं कि चल गया,
कुछ पता चलता नहीं
कब दिन उगा और ढल गया
रेत पर आँधी-हवाओं में
है बहुत मुश्किल बहल लो !

प्राण की गति हो रही है शांत
क्यों न इसकी धार गंगा से मिला दें
आओ, मेरे मित्र ! जंगल से निकल कर
रेत पर एक फूल सुंदर-सा खिला दें
पहले अपने हाथों में तुम आज
प्रेमपूरित मेरे प्राणों का कमल लो ।

गीत (१५)

आज देखा रूप अपना
आईने में ।

मुझमें हैं मधुमास पुष्पित
मुझमें है सावन समाया
मुझको ही तो सब लगे हैं
चाहने में ।

आँख में खंजन छुपा है
कंठ में कोयल छिपी है
देर क्यों मुझको लगी
यह जानने में ।

सामने में क्या नहीं था
ठंड भी थी, ग्रीष्म भी थी
बस तुम्हीं ही तो नहीं थे
सामने में ।

तुम चितेरे हो, तो क्या हो
रूप मेरा भर भुवन तक
उम्र लग जायेगी तुमको
आँकने में ।

गीत (१६)

जो रुको, तो
रोक लूँ मैं उस समय को ।

तुम नहीं तो
क्या पवन यह,
आग-आवृत
घन सघन यह,
वह नहीं पाषाण तो क्या
जो नहीं समझे विनय को ?

यह हृदय-मन
कोश रस का,
अंत क्या पाओगे
इसका,
सुरभि का जो स्रोत शीतल
काठ मत समझो मलय को ।

रंग इसका जो लगे
छूटे नहीं
कौन-सी यह डोर है
टूटे नहीं
क्या कभी देखा है तुमने
रश्मियों के इस वलय को ?

गीत (१७)

सुख मेरा भी
आसपास है,
जब तक मेरा अमलतास है ।

क्या होता है
दूर गगन पर बादल सूखा,
चाल-चलन
व्यवहार तलक भी
रूखा-रूखा
रहे आग बरसाता सूरज
मेरा मन फिर भी पलाश है ।

बरसेगा बादल, तो डर है
कंचन के दिन गिरा न जाए,
मधुर स्वप्न में
सोये मन को
गर्जन से ही डरा न जाए,
मेरी खुशी देख कर दुनिया
जाने कब से ही
उदास है ।

गीत (१८)

यह बवंडर कौन-सा है
नोचता कलियों को,
फूलों-पल्लवों को !

बाग की सहमी हुई हैं
डालियाँ,
कोमल लताएँ,
छिप रही हैं जंगलों में
भोर की सहमी हवाएँ;
रो रहे हैं विहग वन में
देख कलियों के शवों को ।

यह गगन में
कौन-सी छाया उभरती आ रही
रो रहे कचनार ही क्या
सुरभि भी पथरा रही,
थरथरी-सी लग गई है
आज नदियों के लबों को ।

गीत (१९)

चलो मिल कर उड़ाते हैं
हवाओं में ये अपने मन !

उड़े मन ही नहीं
तन को उड़ा दें,
धरा से नभ अलग है
अब जुड़ा दें,
रुई-सी हो रही है रेत
नहीं तुम शूल-सा यूँ बन !

सुनो पुरवा कहे क्या,
क्या न मानोगे ?
पुहुप कुछ पूछते हैं,
क्या न जानोगे ?
नहीं भीगे कभी ये प्राण
नहीं बरसा ही वैसा घन ।

गीत (२०)

रेत पर चलते हुये
ये पाँव मेरे
छिल गए हैं ।

किस जगह पर मैं रुकूँ
घर कि या वन ही कहाँ हैं
दूर तक फैली पठारी
रेत के कण
फिर यहाँ हैं,
देख कर मुझको अकेला
सब विपक्षी
मिल गए हैं ।

हो रहा भूकम्प क्षण-क्षण
वृष्टि की संभावना है,
मृत्यु है
और जिंदगी की
दीन स्वर में याचना है,
छत बचे तो किस तरह
जब पाये सारे
हिल गए हैं ।

गीत (२१)

थकी देह, थका मन
लेकिन विश्वास यही
यहीं-कहीं छाँव है ।

दूर-दूर पीपल क्या
बरगद क्या,
रेत का समंदर है,
शोलों का अम्बर है;
फिर भी यह कौन लगे बादल,
सर पर ज्यों छाँव है ।

आग लगे अमलतास
काँटे ज्यों गुलमोहर,
धूल; कुसुम के पराग
आँधी, ज्यों मधुर राग ।
जब से है मन ने यह सुन लिया
कागा का काँव है ।

गीत (२२)

मैंने तुम्हें कहा था, आना
भेज रहे संवाद मुझे हो ।

अमराई में
कूक रही है
कोयल कहीं अकेली,
उत्तर मुझको ही देना है
अनबुझ भले पहेली ।
क्या कुछ ऐसा कभी हुआ है,
जिससे कि आह्लाद मुझे ही ?

आयेंगी ये ऋतुएँ कल भी
जायेंगी ये ऋतुएँ कल भी,
यह वसंत भी क्या ठहरेगा
फूल नहीं, न तितली कुछ भी,
मौसम यह भी झर जाएगा ।
भूल गए मुझको, तो क्या दुख,
अब तुम ही क्या याद मुझे हो !

गीत (२३)

मन यही करता
तुम्हारी राह पर चलती रहूँ ।

क्या हुआ
ये पाँव थके हैं
प्राण लगते हैं, झुके हैं,
हो भले ही
देश-पल ये आग
आग पर चलती रहूँ ।

पुष्प का मकरंद मेरा
पुष्प मेरा,
नाम के अनुकूल हूँ मैं
क्या करेगा यह अंधेरा !
सोच हो जो एक छलना
उम्र भर अपने को मैं
छलती रहूँ ।

गीत (२४)

एक ही तो मन मेरा था
जो समर्पित हो गया
तो हो गया ।

भाव जो मन में उठा था,
द्वार पर आए थे जब तुम,
सिंधु-सी मैं बन गयी थी
गीत वह गाये थे जब तुम ।
लहरों को शय्या बना कर
मन मेरा ये सो गया
तो सो गया ।

क्या कोई हो फिक्र अब तो
कौन-सा दिन मन दिखाए,
साथ बीते फूलों के दिन
लौट कर आये न आये,
भाग्य क्या बोयेगा अब कुछ !
बो गया सो बो गया ।

गीत (२५)

क्या हुआ
कि नींद आती ही नहीं है
रुक गयी है रात
जाती ही नहीं है

उड़ रहे हैं स्वप्न आँखों में
हजारों रंग लेकर
कहाँ ये जाना चाहे आज
मुझको संग लेकर ।
सामने मधुमास पागल है
और कोयल है कि
गाती ही नहीं है ।

सामने झरना प्रवाहित
सरित बहती है,
क्या बुझेगी प्यास मेरी ?
स्वाति कहती है ।
पुरवा आई, पर कहीं से मेघ
लाती ही नहीं है ।

गीत (२६)

साथ कोई दे न दे
तुम साथ रहना ।

यह अकेलापन
डरायेगा किसी को,
डर तो लगता है
अकेले में सभी को,
इसलिए तो है जरूरी
मैं चलूँ दो डेग, तो तुम
साथ चलना ।

आँधी है दुनिया
उड़ाना जानती है,
हित नहीं यह
बस अहित पहचानती है,
उस अकेले रास्ते पर,
है निकलना ।

फिर तो सागर
रेत समझो
प्रेम का बल
प्रेत समझो
कब मुझे स्वीकार है कुछ भी
प्राणों की यह हाँक सुन कर
तुम न रुकना ।

गीत (२७)

ओ घटाओ, आज बरसो,
फिर बरसने को न तरसो ।

यह धरा भी बहुत प्यासी
ढो रही है बदहवासी
शांत हो ले आग मन की
इस कदर तुम आज परसो !

रेत पर पुष्पे कुसुम-दल
इस तरह हो पवन चंचल
कह रहा है क्या पपीहा
ओ निठुर तुम आज सरसो !

घिर गई काली घटाएँ
सरसराती है हवाएँ
अब तुम्हें क्या हो गया यह
काठ के मन, अब तो हरसो !

गीत (२८)

तुम जो साथ मिले तो
जीवन : गुलमोहर की छाँव ।

जीवन क्या है
तपा सूर्य है,
शांत हवा है,
मेरा नत शिर,
ऐसे में तो याद तुम्हारी
लगा शहर से चल कर आया गाँव ।

सोचा था क्या
कभी ये मैंने–
उलझ जाएंगे अमराई में
कोयल-डैने ।
चलते-चलते पुष्प-पंथ पर
ले जा रहे पाँव ।

सूना पथ है
सन्नाटा है, ज्वार नहीं
केवल भाटा
और आस है
आज सुबह से ही छप्पर पर
कागा उचरै काँव ।

गीत (२९)

कितने दिन
और कहो, तुम बिन ।

पुरवा की आग
बहुत झुलसाए,
दिन में ही धूमकेतु
दिखलाए,
मेंहदी के बदले तलहथी पर
जलती है आगिन ।

लम्हों को नींद नहीं
साँसों पर पहरा,
आँसू की कजली पर
प्राणों का लहरा,
दिन है अभागा
तो रात भी अभागिन ।

गीत (३०)

कौन कहे
जीवन के पार कहीं जीवन है
धरती पर मैं हूँ
और मेरा यह मन है ।

गाती हवाएँ ये
नाँचती घटाएँ ये
मेंहदी हथेली पर
आँखों में अंजन है ।

पतझड़ है संत कहीं
छाया वसंत कहीं
कजरी को गाता
यह सावन मनभावन है ।

अपना घर अपना है
ऐसा सुख सपना है
हाथों में झुमका
तो कानों में कंगना है ।

गीत (३१)

सपने में रह-रह कर
श्वास मुस्कुराती है,
नींद नहीं आती है ।

एक गाँव दिखता है
फूलों का,
जिसमें आवास कहीं
मीठी उन भूलों का,
उठ जाती है मन में एक आस
और फिर चिढ़ाती है ।

लौट-लौट जाती है
फूलों की गंध,
जोड़ कर जन्मों का
रेशमी अनुबंध,
किसके ईशारे पर मधुवन से पगली
मुझको बुलाती है ।

गीत (३२)

कितनी जल्दी बदल गए तुम
बहते जल-से निकल गए तुम ।

कल तक दिन
नव पल्लव के थे
रात चैत की
पुरवाई थी
क्या पछिया ने सुना दिया था
बातों से ही बहल गए तुम ।

दोष किसे दूँ
क्या सुख इसमें
इसीलिए बस
इतना बोलूँ
कितने चुप-चुप सजल गए तुम ।

गीत (३३)

जब तक साँसे साथ चले
तुम साथ चलो, है मीत ।
पावस है
तो इंद्रधनुष भी
यह धरती तो
दिनकर की ही,
कायम रहे स्वाति-चातक की
युगों-युगों तक जीत ।

बहुत शोर है
कोलाहल है,
शुष्क हृदय का ही
यह फल है,
आओ, साथ चलें बन जाएं
निर्झर का संगीत ।

जीवन रेत
रेत पर आगिन
पड़ी उम्र है
जैसे नागिन,
प्रेम नहीं अनुकूल अगर तो
सब कुछ ही विपरीत ।

गीत (३४)

मैं हूँ तुम्हारे साथ
तुम मेरा प्यार लो ।

माना कि तुमसे मैं
दूर, बहुत दूर, वहाँ
सपने भी आ सकते
किसी तरह नहीं जहाँ,
शायद मैं लौट जाऊँ
सुन कर पुकार को
मन से तुम एक बार
अब तो पुकार लो !

मैं भी तो हूँ उदास
एक यहाँ साथी बिन,
रूठे आषाढ़, सौन,
भादो और आश्विन,
अपनी ही बात क्यों
मेरी भी बात सुनो,
बिना दाम सुख जब हो
दुख क्यों उधार लो ।

गीत (३५)

बन तुम्हारे
एक ज्वाला ही तो जीवन !
कह रहा मन ।

साँस की गति
हो रुकी-सी,
गिर गई है लय
झुकी-सी
प्राण ही जैसे नहीं हो
यूँ शिथिल है आज खंजन ।

लौट आओ मेघ
घिरकर आज फिर से,
आ रही पुरवा की हाँके
हैं किधर से !
यह अचानक क्या हुआ ?
तन आज चंदन ।

गीत (३६)

मोह कैसा आज मन का
चाँद कर में हो गगन का !

चाँदनी शृंगार मेरा
तारे घुंघरू आज होले,
पायलों में बाँध लूँ मैं
नृत्य से पहले ही बोले !
रात ही हो सेज मेरी
यह समय तो है शयन का ।

हो रहा व्याकुल कोई है
मेरी ऐसी कामना पर,
प्राण को उत्सर्ग करता
है कोई इस भावना पर ।
मिल रहा सन्देश मुझको
हाँफते, आते पवन का ।

गीत (३७)

इस तरह तुम पास आए
जिस तरह मधुमास छाए ।

बह उठी सरिता अचानक
रेत पर सूखी हुई-सी,
देह ऐसे उड़ चली
जैसे हवा में ही रुई-सी,
इस तरह तुम पास आये आज
जड़ पड़ी-सी देह में ज्यों साँस आये ।

कोयलों के बोल से
बजने लगी अमराइयाँ,
खूब बरसा मेघ मन में
खूब छिटकी बिजलियाँ,
काट ली है अवधि दुख की
अब नहीं वनवास आये ।

गीत (३८)

मुझसे दूर हुए जाते हो
और मुझे ही समझाते हो ।

सुन लो, है मालूम सभी कुछ
क्या है देश-काल की गतियाँ,
मैंने है आँखी से देखी
झड़ जाती हैं खिल के कलियाँ,
प्राणों पर आघात करो तुम
प्राणप्रिय भी कहलाते हो ।

मुझको अपना देश चाहिए
अपना घर, घर का आँगन हो
नहीं चैत, बैशाख जेठ ही
मेघों से घिरता सावन हो,
इन चीजों से खाली-खाली
कौन देश तुम दिखलाते हो ।

गीत (३९)

तुम नहीं हो
बाँसुरी पर बज रही है,
भ्रम कहो मत,
यह सही है ।

हैं हवाओं में किसी की आहटें,
पदचाप,
बज रहे हैं पाँव मेरे
आज अपने आप ।
बात है कुछ तो कही
कुछ अनकही है ।

युग-युगों से चाहती
जिस गीत को थी,
मैं तड़पती ही रही
जिस प्रीत की थी,
बाँसुरी में बज उठा संगीत जो है
वह यही है ।

गीत (४०)

रहे ये जब तक शशि-दिनमान,
जिए यह मेरा हिन्दुस्तान ।

यहाँ पर भारत, ऊपर स्वर्ग,
कहाँ कुछ फर्क है, एक समान ।

हिमालय-गंगा की छवि आये,
अगर आये मन में कुछ ध्यान ।

तुम्हारी याद आते ही क्यों
सभी दुख होते अंतर्ध्यान ।

यही है देश जहाँ आते
अतिथि देव बने भगवान ।

इसी की आभा से यह विश्व,
दिखाता इतना है छविमान ।

गीत (४१)

सावन बन कर तो आये तुम
पर सावन के जाते-जाते
आग लगी तन-मन में
देखी कभी नहीं थी ज्वाला
ऊपर उठते घन में ।

घुमड़ा था आकाश
अनल की बूंदे बरसी थी,
एक बूंद जल की ही खातिर
धरती तरसी थी,
रोया था मन विलख-विलख कर,
आँसू नहीं नयन में ।

ऐसा जल गया सावन है
पुरबा से भय लगता,
जैसे मन में राग जगाऊँ
योग तुरत है जगता,
साँसों को रोके चलना है
अब तो मधुरासन में ।

हिन्दुस्तान

हमारे जीवन का अरमान,
हमारा प्यार हिंदुस्तान ।

नहीं रहना उस अचला पर,
जहाँ न भारत का सम्मान ।

यहाँ के नर-नारी ही क्या
अचल तक, जैसे कि भगवान ।

भला भय क्या हो तम से तब
जहाँ का रजकण तक दिनमान ।

हिमालय इसके सर पर है,
चरण में सागर है पहचान ।

हमारे देश की जो आभा,
रखो तुम इस आभा का मान ।

यही तो भारत देश

यही तो भारत मेरा देश,
जहाँ न दुश्मन से भी द्वेष ।

कभी तो रास रचाये कृष्ण,
कभी तो नटवर शिव का भेष ।

सिंहासन छोड़ लिया वनवास,
मेरे भारत का यह उन्मेष ।

खड़ा है हिमगिरि रक्षा में,
चली है गंगा खोले केश ।

बने यह बुद्ध नयन मूंदे,
नयन खुलते ही यह नागेश ।

मेरे भारत की यह आभा,
नहीं यह होने वाली शेष ।

वंदे मातृभूमि

शोभे मेरा देश
मेघ ज्यों नील गगन पर ।

इसके प्राणों के स्वर
फैले देश-देश में,
गंगा की धारा बन विचरे
व्योम-केश में,
'मातृभूमि' वंदे छा जाए
अखिल भुवन पर !

इसकी मिट्टी, इसके सागर
और हवाएँ
प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं
क्या बतलाएँ,
मां का मन बैकुंठ हमेशा
एक नमन पर ।

भारत माता, प्राणों में
प्राणों की हलचल,
मानसरोवर में शोभे ज्यों
कंचन शतदल,
टंगा हुआ हो पूनो का शशि
नील वसन पर ।

(यह गीत मैंने, मुंबई में कार्यरत अपनी बेटी के लिए १५ अगस्त २०१८ को लिखा था)

गजल (१)

इस दुख का कुछ पार नहीं है,
घर है पर परिवार नहीं है ।

सौ-सौ खून किये बैठे हैं,
कातिल का व्यवहार नहीं है ।

मिलती हों जब उनसे नजरें,
मिलना भी दुश्वार नहीं है ।

यह इक्कीस सदी सुधरेगी,
इसका कुछ आसार नहीं है ।

उस नौका को कौन बचाये,
जब उसका पतवार नहीं है ।

घटना कथा-कथानक सबकुछ,
क्या है इक किरदार नहीं है ।

क्यों न करे परदेशी हमला,
हममें ही जब प्यार नहीं है ।

आजादी की साँस नहीं है,
माना कारागार नहीं है ।

कैसे डूबी थीं नौकाएँ,
जब कहते मझधार नहीं है ।

पहली बार ये मैंने देखा,
फूल खिले गुंजार नहीं है ।

प्यार खरीदोगे कैसे तुम,
दिल है ये बाजार नहीं है ।

गजल (२)

जुल्म का मुझ पर तुम्हारा सिलसिला है,
पर नहीं कमजोर मेरा दिल किला है ।

जानती हूँ प्रेम धोखा आजकल है,
पर मेरा ये दिल क्यों ऐसे बावला है ।

न्याय पर बैठा हुआ कातिल मेरा है,
पेश मेरी जिन्दगी का मामला है ।

आग को पानी औ पानी आग कर दें,
क्या बतायें क्या हमारा हौसला है ।

कल अकेले थे तो मंजिल सामने थी,
आज मंजिल गुम, फकत संग काफिला है ।

कहने को कहते गजल है आग सब ही,
पर गजल कहना बहुत भारी कला है ।

गजल (३)

नारी तन है,
चन्दन वन है।

प्यार तुम्हारा,
दृग-अंजन है ।

खूब हँसूँगा,
मेरा मन है ।

याद तुम्हारी,
ज्यों चन्दन है।

मौत करे क्या,
जब जीवन है।

कहाँ चाँदनी,
चन्द्र-ग्रहण है।

जेठ चैत है,
पास सजन है।

गजल (४)

सुख परदेशी,
दुख आया है।

सब अपने हैं,
सब माया है।

जलना ही है,
यह काया है।

दिल खो करके,
दिल पाया है।

सीधे क्या है,
सब वाया है।

गजल (५)

बिकता आँचल,
निश्चय दलदल ।

पाप करो तुम,
भोगें हम फल ।

पर्वत गायब,
खाली जंगल ।

मरा शराबी,
नाँचे बोतल ।

आँख ले गया,
जलता काजल ।

उजड़ी महफिल,
टूटे पायल ।

पागल मौसम,
सुलगे सेमल ।

गजल (६)

जीवन तो झरना है,
रुकने से मरना है ।

आँधी तो आती है,
आँधी से लड़ना है ।

साँसे जब गिरवी हों,
हर पल ही मरना है ।

काँटे, बोते सब हैं,
काँटों में हँसना है ।

कोई साथी ना हो,
तनहा ही चलना है ।

काम अकेले सारा,
मुझको ही करना है ।

करते रहते हो तो,
आभा जय होना है ।

गजल (७)

जब भी दिल को खोला है,
दुनिया बन गई शोला है ।

सबको साधु संत समझता,
वह भी कितना भोला है ।

दिल को खाली-खाली पाया,
जिसको जब भी तोला है ।

आँसू आहें कदम-कदम पर,
जीवन नहीं फफोला है ।

उनका हँसना, मिलना-जुलना,
ऊपर का ही चोला है ।

जितना तन चमकाओ लेकिन,
फटा पुराना झोला है ।

धरती ने जब जोर लगाया,
अम्बर तक भी डोला है ।

ऐसी राह चुनी आभा ने,
हिचकोला हिचकोला है ।

गजल (८)

हाथ तुम्हारे थामे चलना अच्छा लगता है,
ऐसे में कुछ और फिसलना अच्छा लगता है ।

एक अंधेरा हमदोनों को जग से रखता दूर,
अंधेरे में तुमसे मिलना अच्छा लगता है ।

जिन बातों को सुनकर तुम भी जाने क्या सोचो,
इन सब को गजलों में कहना अच्छा लगता है।

तुम बोलो तो बोलो 'सजनी' बहुत भली लगती,
अब तो मैं भी बोलूँ 'सजना' अच्छा लगता है।

एक बार क्या तन्हाई में मुझसे गले मिले,
अब तन्हा-तन्हा ही मिलना अच्छा लगता है ।

मत जाने की बात करो तुम दूर-दूर आँखों से,
साजन ही तो गहना सजना अच्छा लगता है ।

हायकू

योग उतरे
विश्व के मानस में
युग बदले ।

२
कपालभाती
अनुलोम-विलोम
मुक्ति के द्वार ।

३
योग-विरोध
युग का विरोध है
दीन बोध है ।

४
ताड़ासन क्या
सिर्फ ताड़ासन है ?
सुखासन है ।

५
स्वास्थ मन का
बन्द है दरवाजा
योग खोलेगा ।

६
मातृभाषा तो
माता के समान है
देवी दुर्गा है ।

७
जो कुछ कहो
बिना हिचक कहो
मातृभाषा में ।

८
पलना ही क्या
सावन का झूला है
अपनी हिन्दी ।

९
हिन्दी रहेगी
तो रहेगा हिन्द भी
सौ कल्पों तक ।

१०
हिन्दी-विरोध
भारत का विरोध
राष्ट्रविरोधी ।

११
गंगा माता है
पतित पावनी है
मुक्तिदामिनी ।

१२
बहो माँ गंगे
धरती पर ही क्या
जन-मन में ।

१३
कौन छेड़ता
माता गंगा को ऐसे ?
प्रलय लेगा ।

१४
गंगा का मन
अमृत का पलना
मानसर-सा ।

१५
शिवगंगा को
बहने दो अबाध
जग निर्मल ।

१६
बांध रहे हो
बांधों से नदियों को
धसेगी धरा ।

१७
कटते वन
देवों का क्रन्दन है
महाप्रलय ।

१८
भारत जैसा
कितना विशाल है
बर का वृक्ष ।

१९
निर्मल मन
हर्षित हो सिहरे
पीपल वृक्ष ।

२०
ये दुर्वादल
मुझको तो लगते
चन्दन वन ।

२१
उमड़े घन
कान्हा की टोलियाँ हो,
ऐसा ही लगे ।

२२
घन गरजे
विरही के दुख-सा
रोकेगा कौन ?

२३
फूले कदम्ब
पपीहा बोले-पिया
रोये बादल ।

२४
हीरे का हार
बिजली छिटकती,
मन भ्रमित ।

२५
करिया मेघ
पुरबैया का झोंका
ठनका-रास ।

२६
नदी-पोखर
पानी से उबडुब
बादल हँसे ।

२७
महक उठे
साल और शिलन्ध्र
आषाढ़ आया ।

२८
इठलाया है
सघन बाँस वन
मेघ क्या आया ।

२९
हाथ उठाए
कुटुज के कुसुम
सावन आया ।

३०
केतकी खिली
खिल गई जूही भी
पावस आया ।

३१
मेघ क्या बोले
दादुर को पता है
टर्र ही टर्र ।

३२
मेघ गरजे
विरही मन रोया
मयूर नाचे ।

३३
घन गरजे
कि हाथी ही चिग्घाड़े
झिंगुर झन ।

३४
मालती देखे
मौलश्री का शृंगार
मेघ पाहुन ।

३५
आश्विन मास
टिटहरी के बोल
शरत ऋतु ।

३६
खिले कमल
किसको आमंत्रण ?
गाए भ्रमर ।

३७
शरत शोभा
हिरणों की कुलांच,
खंजन-राज ।

३८
शरत क्या है
स्वाति नक्षत्र-घर
सीपी का प्यार ।

३९
शरत ऋतु
अड़हुल कुसुर्म !
देवी का रूप ।

४०
लाई शरत
पके धानों की गंध
कुमुद हँसे ।

४१
शरत ऋतु
दुपहरिया फूल
हरश्रृंगार ।

४२
त्रिशंकु दिखा
मुचकुन्द कुसुम
हेमन्त ही है ।

४३
भ्रमर मौन
कुमुद डरे-डरे
चिड़िया चुप ।

४४
गेहूँ का मन
जैसा ही बौराया है
हेमन्त आया ।

४५
हेमन्त मन
केतारी का रस है
मीठा अगाध ।

४६
आया शिशिर
जाड़े का पाश लिए
पाले की छड़ी ।

४७
पछिया हवा
फिर उतराही भी
शिशिर-सखा ।

४८
ठण्ड से काँपे
नदी, पोखर, वन
शिशिर आया ।

४९
दिन अंगुल
हाथ भर की रात
पूस है कि बर्फ !

५०
'रुई कि दूई'
शिशिर ही समझे
अर्थ इसका ।

५१
आगिन-सुत
सूर्य हुआ शीतल
कुन्द कुसुम ।

५२
बेर-सी आँखें
नारंगी-से अधर
देखा शिशिर ।

५३
सजे-धजे हैं
वृक्ष-वृक्ष के पात
फागुन आया ।

५४
कोयल कूकी
पपीहा भी पुकारे
वसन्त आया ।

५५
चन्दनी हवा
दक्षिण से चलती
उत्तर आई ।

५६
वसन्त आया
मैने का शोर मचा
सुग्गें का टें-टें ।

५७
हारिल हँसा
पपीहा पुकार से
मधुमास है ।

५८
आम्र वन में
महकती मंजरी
वसन्त नाचा ।

५९
मधुमास है
कामदेव क्या करे
महुआ मत्त ।

६०
कहीं कनेल
कहीं माधवी लता
कौन-सी ऋतु ?

६१
मधुमास है
फूले कचनार
सब अशोक ।

६२
आया बैशाख
प्यासा है गाँव-गाँव
जेठ जो जरे ।

६३
महल नहीं
मिट्टी का घर मोहे
गर्मी जो आई ।

६४
लहक उठे
धरती औ पर्वत
नदियाँ सूखीं ।

६५
स्वर्ण केतकी
शिरीष संग खिले
ग्रीष्म है तो क्या ।

६६
भारत माता
इससे क्या कम है
माँ मातृभाषा ।

६७
विरोध करो
पर सत्य का नहीं
युग बदला ।

६८
आहट सुनो
नया युग आ रहा
हौले-ही-हौले ।

६९
तुलसी सही
एक छोटा-सा पौधा
मुक्ति की महिमा ।

७०
जीवन मिला
क्या अर्थ है इसका
कब सोचोगे ?

७१
कौन कहता
जीवन को अपना ?
धरोहर है ।

७२
कौन भूलेगा
वीर सावरकर
कवि था योद्धा ।

७३
एक आकाश
एक पूरी दुनिया
महात्मा गाँधी ।

७४
वह देश था
उबलता खून था
भगत सिंह ।

७५
सूर्य साधक
अग्नि का सपूत था
चन्द्रशेखर ।

७६
क्रुद्ध शंकर
भगवती का कोप
महेन्द्र गोप ।

७७
कवि प्रसाद
निराला, महादेवी
काव्य-त्रिवेणी ।

७८
कविता ही न
मिथिलेश दीक्षित
अनुभूति भी ।

७९
ठण्ड की धूप
ग्रीष्म की छाँव जैसी
मृदुला शुक्ला ।

८०
जेठ की तपी
दीदी मृदुला शुक्ला
गंगा की बेटी ।

८१
मृदुला शुक्ला
जटायु की पाँख ही है
आँधी तौ तौले ।

८२
अपना गाँव
चन्दन का जंगल
माँ का आँचल ।

८३
मित्रों की याद
नैहर का संवाद
अपना गाँव ।

८४
सूखती नदी
उजड़ते जंगल
डरी धरती ।

८५
सहमी धरा
भयभीत आकाश
ताण्डव जारी ।

८६
अतीत मरा
भविष्य धुआँ-धुआँ
आज, आज है ।

८७
खाली हाथ से
इतिहास रचोगे
तभी बचोगे ।

८८
समझो इसे
काल सबसे बड़ा ।
जीवन क्या है ?

८९
चलते रहो
सारा आकाश लिए;
मुट्ठी में धरो ।

९०
युग उसी का
समय भी उसी का
जो क्रियाशील ।

९१
दुख साथ रहे
सुख तभी सार्थक
सार समझो ।

९२
धन का मोह
मृत्यु की उपासना
शव-साधना ।

९३
दुख गुरु है
क्या नहीं सिखाता
जीवन देता ।

९४
आधुनिकता
उपलब्धि ही क्या है ?
मुट्ठी में रेत ।

९५
कवि-कविता
मुक्ता मणिक रेत के
रात रौशन ।

९६
कविता क्या है ?
दुख की आत्मकथा
आँसू का लेख ।

९७
आदमी है या
उबलता लावा है
या कि आबां है ?

९८
नहीं दिखता
दूर तक मंजिल
रेत-ही-रेत ।

९९
आदमी ही है
जो कभी नहीं हारा
नहीं हारेगा ।

१००
कल की बात
बच्चों की कहानी है
झूठ भी सच ।

१०१
चाँदनी रात
खुले मन का प्यार
तृप्ति-ही-तृप्ति ।

भागलपुर

भागलपुर या भंगल है
या भाग्यदत्त का बदला रूप,
चम्पा यही, मालिनी जैसे
यही कभी था देश अनूप ।

कितने-कितने नाम लिए हैं
बलि के बेटे का यह अंग,
यहीं हुआ शिव-क्रोधानल से
कामदेव रतिदेव अनंग ।

सागर-मंथन की धरती यह
देवासुर का पहला योग,
किसने कितनी ताकत पाई
किसने कितना पाया भोग ।

अष्टावक्र की यही भूमि है
कौल ऋषि का पावन धाम,
बलि-वामन की कथा-भूमि जो
शुद्ध हृदय निर्मल निष्काम ।

रोमपाद की पुण्य भूमि यह
ऋष्यश्रृंग के तप का लोक,
जहाँ शोक भी आ जाये तो
हो जाये वह तुरत अशोक ।

यह अशोक की माँ की अचला
यही विशाखा का इतिहास,
चन्दनबाला, जैन महावीर,
का यह खुला हुआ आकाश ।

यह बिहुला का नैहर कंचन
यह वासू का अमृत धाम,
सत्य, अहिंसा का झूला यह
कर्म घूमता है निष्काम ।

विश्वामित्र, विभाण्डक की यह
भूमि सदा अमृत का कौश,
यहीं हुए करकण्ड जह्नु ऋषि
गूँज उठा जीवन-उद्घोष ।

यह गंगा-कोशी की धरती
मणि, चानन, बडुआ और चीर,
बहती जाती है अशोक-सी
मयूराखी हरती सब पीर ।

यहाँ बहा था बुद्धम शरणम्
शंघम् शरणम् का संगीत,
अब भी गूँज रहा चम्पा में
बाला-बिहुला का है गीत ।

कर्ण दानी की अमर भूमि यह
यहाँ कमल-सा खिलता दान,
वामन या वाराह कभी तो
कच्छप बन जाते भगवान ।

यह नाथों की जन्मभूमि है
सहज-सहज का चलता यान,
यह प्रभात रंजन का मंडल
मुदगल ऋषि का मधुमय गान ।

यह तिलका की जन्मभूमि है
यहीं उठी थी पहली क्रांति,
यह ऐसा आलोक-लोक है
मरती रहती मन की भ्रांति ।

ज्येष्ठ गौड़ की अमर कहानी
कहता है पुलकित गिद्धौर,
उठा हुआ मन्दार अंग के
उठा रहा है शिर को और ।

जंगल-पर्वत की शय्या पर
सोई हुई खड़गपुर-झील,
फैली चट्टानों के नीचे
सोई एक कथा है शील ।

परशुराम सिंह, सियाराम सिंह
जैसे वीर महेन्दर गोप,
मिटी नहीं है ब्रह्मचारी की
चन्द्रलोक तक छाई ओप ।

आजादी की कथा-कहानी
के गूँजेंगे जब तक बोल,
आगे-आगे सदा चलेगा
अंग महाजनपद-भूगोल ।

जागो शाही, लक्खी शाही
एक अमर ऐसा इतिहास,
जिसके आगे छोटा ही है
ऊपर का सारा आकाश ।

इस धरती की अमर कहानी
गोपीचन, लोरिक, सलहेश,
वृजाभार, बिसुरौत, विजयमल
लचिका रानी का यह देश ।

दीना भदरी, कारू भगत की
बहुरा गोड़िन का जयगान,
पूज रहा है अंग देश यह
मान उन्हें अब तक भगवान ।

कथा लुकेशरी, क्या हरिमल ही
हिरनी-बिरनी, हरिया डोम,
राजा ढोलन, घुघली-घटमा
नयका बंजारा का सोम ।

ज्योति तपस्या, इंदुमाली
रेशमा-चोहड़, माणिक चंद,
महुआ घटवारिन को सुनकर
मीरायन भी होता दंग ।

गाथा नहीं सिर्फ ये केवल
अंग शिराओं के संगीत,
कुरुक्षेत्र के महासमर में
लिखी हुई तीरों से जीत ।

कहाँ बन्द है अब भी गाथा
वैसी ही गति, अब भी धार,
जाग रहा है गाथाओं का
आलोकित मणि का संसार ।

'कौशल्या' ही नहीं, 'मंथरा'
'चिंता' 'राधा' से 'शंबूक'
'तिलकामांझी', 'सती परीक्षा'
'शबरी' की बातें दो टूक।

और 'अंगिका रामायण' भी
उधर काव्य है 'विश्वामित्र'
और 'सवर्णा' 'उर्ध्वरिता' संग
'गेना' कस्तूरी के इत्र ।

'अतिरथि' हो 'अंगेश कर्ण' हो
'माद्री' 'कैकेसी' 'कर्ण' महान,
'भारत भाग्य विधाता' हैं ये
'मुष्ठीयुद्ध' का नाट्य विधान ।

उत्तर से दक्षिण तक फैला
भागलपुर का क्षेत्र अतीत,
चाहे जितना शोर मचा लो
नहीं मिटेगा यह संगीत ।

यह संगीत बहा करता है
गीत-कथा का लेकर रूप,
रेणु, मधुकर, कमला जी में
बोल रहे हैं वही अनूप ।

और इधर रंजन में, शिव में
वही जागता है संगीत,
जो कि विमल, विद्या में गूँजित
मन का बहता है नवनीत ।

उसी रंग में रंगा हुआ है
अमरेन्दर का कथा-विधान,
मृदुला की हिरनी बिरनी ज्यों
छायापथ में हो छविमान ।

राजहंस के कल कूजन में
मीरा का उठता संगीत,
और अंजनी-जगप्रिय की भी
वही कथाएँ, गाथागीत ।

दीप्त तपन की अलग बात है
शिशिर काल में तपे दिनेश,
भागलपुर की कथा अनोखी
कभी न हो पाएगी शेष ।

सरह, शबरपा की धरती यह
हुए दीपंकर ज्यों श्रीज्ञान,
चेलुकपा, लुचिकपा, चम्पपा
से बनती इसकी पहचान ।

मेकोपा ही नहीं, डोम्बिपा
से शोभित थी विक्रमशील,
ढ़ूह अभी भी, पूजाथल पर
बिखरे इधर-इधर हों खील ।

तिब्बत, चीन तलक पहुँचे थे
महायानियों के संदेश,
गौरव करता जिन सिद्धों पर
पूरा ही यह भारत देश ।

बड़ा भाग्यशाली भागलपुर
दो-दो मधुसूदन हों साथ,
ऐसे में कैसे खाली हों
कभी समीक्षक-कवि के हाथ ।

अपना तो बस एक बहादुर
सबकी रक्षा में तल्लीन,
इसलिए तो आभा तक भी
कवि के आसन पर आसीन ।

दयानन्द तो दयानन्द हैं
लेखक-कवि पर कृपानिधान,
और 'प्रजावंशी' भी संग में
गीतों का ज्यों नवल विहान ।

गीतों के स्वर-साधक में तो
ऐसे ही है राजकुमार,
आज नहीं तो कल जानेगा
'नन्हे' भाई को संसार ।

बाँट रही हैं कथा सुजाता
गांधी-पथ पर चल कर शांत
'दुर्वासा' से डर कर कैसा
दूर हुआ जाता है ध्वांत ।

कभी 'अनल' का नगर रहा यह
और कभी मधुमास 'समीर'
जब भी आते याद 'सुमन' जी
मन होता है बहुत अधीर ।

शरतचंद की शीतलता क्या ?
कहाँ यहाँ अब वे वनफूल
गूँज अभी भी नन्द कवि की
चंदन-सी बन जाती धूल ।

जगन्नाथ, दिनकर की धरती
और अवधभूषण का ध्यान,
यह महेश नारायण की भू
क्या समझाऊँ ? क्या आसान ?

बस कण-कण को नमन किये जा
कण-कण में सोया इतिहास,
क्या जाने कब जाग उठे कण
वर्त्तमान हो आये पास ।

■■